विवेक-शिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ | नवम्बर-दिसम्बर—१९६६ | अंक—११-१२

रामकृष्ण निलयम, जयपुरिया नगर, मथुरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५१. श्री श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बक्सिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० धानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री मोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर बाहरा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला दोदिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८. श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एम० डी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धनालाल अमृतलाल सोनेकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामबन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवाड़ा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. मुश्री एल० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. विनय	गोस्वामी तुलसीदास	२
३. मानवरूपी ईश्वर की सेवा	स्वामी वीरेश्वरानन्द	३
४. श्रीरामकृष्ण और भारत का आध्यात्मिक जीवन	स्वामी मुख्यानन्दपुरी	६
५. भगवत्प्रेम (२)	स्वामी यतीश्वरानन्द	१०
६. विज्ञान एवं मानव मूल्य (६)	स्वामी रंगनाथानन्द	१५
७. आशा की किरण	श्री मोहन सिंह मनराल	२१
८. श्री वल्लभाचार्य और वैष्णव धर्म	प्रव्राजिका श्यामाप्राणा	२३
९. कितने विनम्र थे अंजनिपुत्र हनुमान	सूर्यकान्त बाली	२८
१०. साधक के प्रश्न : स्वामी ब्रह्मेशानन्द के उत्तर		३२
११. अवतार तत्व	स्वामी नित्यज्ञानानन्द	३७
१२. बात बने बिन बोले	प्रभात कुमार	४१
१३. मनुष्यता		४४
१४. समाचार एवं सूचनाएँ		४६

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष - १५ | नवम्बर-दिसम्बर—१९९६ | अंक—११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

क्या 'अहं' कभी पूरी तरह से नहीं जाएगा ? कमल की पंखुड़ियाँ समय पर झड़ जाती हैं लेकिन उनका निशान रह जाता है। उसी प्रकार जब मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है, तो उसका अहंकार पूरी तरह नष्ट हो जाता है, पर उसका थोड़ा दाग रह जाता है; किन्तु उस अहंकार से कोई अनिष्ट नहीं होता।

(२)

'मैं' पर विचार करते-करते दिखाई देता है कि 'मैं' केवल एक शब्द भर है। किन्तु फिर भी इसे दूर करना अत्यन्त कठिन है। इस कारण यही कहना चाहिए कि "अरे दुष्ट 'मैं' ! तू जब किसी हालत में जाएगा ही नहीं तो फिर ईश्वर का दास बनकर रह !" "मैं ईश्वर का दास हूँ" यह 'पक्का मैं' है।

(३)

मिठाइयों से रोग होता है, पर मिश्री में दोष नहीं। उसी प्रकार, 'कच्चा मैं' हानिकारक है परन्तु "मैं ईश्वर का दास या भक्त हूँ" इस तरह के 'पक्के मैं' में दोष नहीं है, बल्कि यह साधक के भक्तिपथ पर आगे बढ़ने का ही सूचक है। इसके द्वारा ईश्वर लाभ होता है।

(४)

कच्ची मिट्टी से कुम्हार चाहे जैसी वस्तु गढ़ लेता है, परन्तु मिट्टी यदि एक बार जलकर पक्की हो जाए तो उसके द्वारा गढ़ना नहीं हो सकता। इसी तरह यदि हृदय विषय वासना की आग में एक बार जलकर पक जाए तो उस पर ईश्वरीय भावों का प्रभाव नहीं होता, उसे अभीप्सित आकार नहीं दिया जा सकता।

विनय

— गोस्वामी तुलसीदास

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत, सुनत, विचारत यह मन,
निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥१॥

भगति-ग्यान बैराग्य सकल
साधक यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ, देउ कछु,
असि बासना न उर ते जाई ॥२॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं
तब कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी विपरीत देखि
मोहि समुझि महा भय लागै ॥३॥

जद्यपि भग्न मनोरथ बिधिबस,
सुख इच्छत, दुख पावै ।
चित्रकार करहीन जथा
स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥४॥

हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि
अति भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख,
हरे विनय प्रभु तोरे ॥५॥

मानवरूपी ईश्वर की सेवा

—श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़मठ, (हावड़ा)

[१ जनवरी, १९७९ को रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कलकत्ता के 'इंटेसिव केयर युनिट' का उद्घाटन करते हुए रामकृष्ण मिशन एवं मठ के अध्यक्ष, पूज्यपाद श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने जो मांगलिक वचन कहे थे वे जितने ही प्रेरक हैं उतने ही जीवन-पथ-प्रदर्शक भी। उनके मंगल वचन का बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया है रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी प्रज्ञा चैतन्य महाराज ने। यहाँ हम विवेक ज्योति वर्ष २१ अंक १ में प्रकाशित उसी अनुवाद को विवेक शिखा के पाठकों के लिए पुन: प्रकाशित कर रहे हैं। 'रामकृष्ण सेवा प्रतिष्ठान' अत्याधुनिक संयंत्र एवं अधुनातन उपकरणों से सज्जित ५३५ शय्याओं का एक वृहत् चिकित्सालय है जो लोक-सेवा में समर्पित-भाव से कार्यरत है। सं०]

मैं आप सभी से आज यहाँ मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मुझे याद आ रही है—इस संस्था की साधारण-सी शुरुआत की। १९३२ ई० में बकुलबागान में नारी-रोगिणियों की प्रसव से पूर्व और पश्चात् देख-भाल के लिए एक दातव्य प्रसूति-केन्द्र के रूप में इसकी स्थापना की गयी थी। १९३९ ई० में भवन-निर्माण पूरा हो जाने पर इसे वर्तमान स्थान पर ले आया गया था। उसके बाद २५ वर्षों तक इसने एक प्रसूति-चिकित्सालय के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। दिनोदिन इसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी। तब मिशन के अधिकारियों ने इसे सर्वांगीण अस्पताल का रूप देना उचित समझा। अत: इसमें ६० नये विस्तरों का योग करके इसे पुरुषों, महिलाओं और बच्चों सबके लिए उपयोगी एक सार्वजनिक अस्पताल बना दिया गया। तब से यह संस्था विभिन्न दिशाओं में उत्तरोत्तर उन्नति करती रही है और आज इस महानगर की जनता को चिकित्सा सेवा प्रदान करनेवाली प्रमुख चिकित्सा-संस्थानों में से एक है। यह कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त एक पोस्ट-ग्रेजुएट शिक्षण और शोध संस्थान भी है। मुझसे एक अस्पताल की सातवीं मंज़िल पर अवस्थित १२ विस्तरों से युक्त 'इन्टेंसिव केयर युनिट' का उद्घाटन करने को कहा गया है। अब तक यह युनिट ३ विस्तरों के द्वारा ही कार्य करता रहा है। मैं प्रसन्नतापूर्वक इसका उद्घाटन करता हूँ।

इस अवसर पर मैं आप लोगों के समक्ष श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों द्वारा प्रतिपादित सेवा का आदर्श रखूँगा, जिन्हें ऐसी संस्थाओं में कार्य करते समय हमें भूलना नहीं चाहिए। यह मात्र एक अस्पताल नहीं है वरन् आध्यात्मिक और धर्म-साधना का भी एक केन्द्र है।

श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों के आधार पर स्वामी विवेकानन्दजी ने 'जीव-ही-शिव है' का आदर्श दिशा और यही आदर्श इस संस्था और हमारे सभी कार्यों के मूल में है। स्वामीजी ने हमें मानव में ईश्वर की सेवा करने का आदेश दिया है। यदि हम मानवतारूपी ईश्वर की सेवा करें, तो इससे हमें मन्दिर में पूजा करने के समान ही आध्यात्मिक प्रगति में सहायता मिलेगी। मन्दिर में हम पत्थर के विग्रह में प्राण-प्रतिष्ठा कर

विविध पदार्थों से उसकी पूजा करते हैं, जबकि इस पूजा से प्राण प्रतिष्ठा की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मानव-मूर्ति में तो प्राण प्रतिष्ठित हैं ही। अतः यदि हम इस तथ्य की ओर ध्यान दें और मानवता की सेवा करें तो वह मन्दिर में पूजा करने से किसी मायने में कम न होगा। हाँ, पूजा के उपकरण भिन्न प्रकार के होंगे। मन्दिर में हम पुष्प-धूप आदि का निवेदन करते हैं, जबकि इस पूजा में औषधियाँ, भोजन आदि का। पर दोनों के पीछे भाव एक ही है। इसीलिए स्वामीजी ने हमें मानवता में निहित ईश्वरत्व को देखने और सेवा करने का निर्देश दिया है, क्योंकि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नति में तो सहायता मिलती ही है, साथ ही चिकित्सा, शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के सत्कार्यों द्वारा समाज की भी सेवा होती है। अतः इस महान् आदर्श को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिए। इस संस्था के कार्यकर्त्ताओं का ध्यान मैं इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि उन्हें इस आदर्श के पालन में जरा सा भी अतिरिक्त समय, शक्ति या धन का व्यय करना न होगा। करना बस इतना ही होगा कि कर्म करते समय उन्हें अपना मानसिक दृष्टिकोण बदल लेना होगा और रोगी की सेवा करते समय उसके अन्दर ईश्वरत्व और देवत्व देखना होगा। इससे उन्हें अपनी आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायता मिलेगी। किसी भी युग में ईश्वरोपलब्धि का पथ इतना आसान नहीं हुआ था। स्वामीजी के इस नये आदर्श के अनुसार अब हमें वन में जाकर ध्यान में बैठने की अथवा पूजा आदि करने की आवश्यकता नहीं है। रोगियों की सेवा करते समय सिर्फ हमें अपना दृष्टिकोण बदल लेना होगा। इससे हमारा कार्य बड़ा आसान हो जाता है। इतना ही नहीं, यह हमें एक वर्गहीन समाज, जिसके लिए आजकल प्रयास चल रहा है, की शुरुआत में भी सहायक होगा। कारण यदि हम प्रत्येक मनुष्य में उसी एक ईश्वर को देख सकें तो इस जगत् में हम जिन विषमताओं को देखने के आदी हैं, वे लुप्त हो जाएँगी। रह जायगी मात्र एक मानवता, जिसके माध्यम से शाश्वत आत्मा स्पन्दित हो रही है। इस प्रकार बिना अधिक कष्टसाध्य परिश्रम के समाज में वर्गहीनता लायी जा सकती है। इस नये आदर्श को लाने में किसी लड़ाई-झगड़े या संघर्ष की भी आवश्यकता नहीं है। फिर स्वामीजी द्वारा प्रचारित इस नये आदर्श में एक बड़ा लाभ है।

आज धनिकों का यह कर्त्तव्य है कि वे गरीबों और उनकी उन्नति के लिये कार्य करें। जैसे मानव-शरीर में रक्त-संचार होता है, वैसे ही समाज या राष्ट्र शरीर में सम्पत्ति का संचार होना चाहिए। रक्त का संचरण यदि शरीर के किसी अंग में न हो, तो वह अंग शिथिल होकर उस मनुष्य के जीवन को खतरे में डाल देगा। इसी प्रकार यदि समाज या राष्ट्र के किसी अंग में धन का संचार नहीं होता, तो वह अंग शिथिल होकर अन्त में उस पूरे समाज या राष्ट्र के विनाश का कारण होता है। यह बात स्मरणीय है कि राष्ट्र के और दूसरों के हित में ही हमारा हित भी निहित है। जिनके पास धन है, उन्हें उसका अंश निर्धनों के आर्थिक विकास में लगाना चाहिए, इसी में उनका कल्याण है। स्वार्थी व्यक्ति को आनन्द लाभ असम्भव है। एक मात्र निःस्वार्थता ही आनन्द प्रदान करनेवाली है। हमारी प्रसन्नता दूसरों की प्रसन्नता पर और हमारी भलाई दूसरों की भलाई पर आश्रित है, यह तत्व यदि भुला दिया गया, तो प्रसन्नता-लाभ असम्भव है।

मुझे स्वामीजी के जीवन की एक घटना याद आ रही है। तब वे अमेरिका में काफी प्रसिद्ध

हो चुके थे, समाचार-पत्रों में उनके बारे में लिखा जा रहा था और सर्वत्र उन्हीं की चर्चा चल रही थी। विख्यात धनकुबेर जॉन डी० रॉकफेलर ने अपने मित्रों को बार-बार इस असाधारण और अद्भुत हिन्दू संन्यासी की चर्चा करते हुए पाया। कई बार उन्हें स्वामीजी से मिलने का आमंत्रण भी मिला, पर किसी-न-किसी कारणवश उन्होंने हर बार टाल दिया। उन दिनों रॉकफेलर यद्यपि अपने भाग्य के चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुँचे थे फिर भी वे एक शक्तिशाली और दृढ़ इच्छा सम्पन्न व्यक्ति थे। उनसे कोई भी बात मनवाना असम्भव-सा था।

यद्यपि स्वामीजी से मिलने की इच्छा न थी, पर एक दिन वे एक मनोवेग से प्रेरित हो सीधे अपने उस मित्र के घर जा पहुँचे, जहाँ स्वामीजी ठहरे हुए थे। रसोइये ने दरवाजा खोला और वे उसे धक्का देते हुए अन्दर घुस गये और बोले कि वे हिन्दू-संन्यासी से मिलना चाहते हैं। रसोइये ने उनके ठहरने के कमरे की ओर इंगित किया और रॉकफेलर बिना सूचना दिये या इन्तजार किये स्वामीजी के अध्ययन कक्ष में जा पहुँचे। यह देखकर उनके विस्मय की सीमा न रही कि लिखने की मेज पर बैठे हुए स्वामीजी ने आगन्तुक की ओर नजर तक न उठायी।

कुछ क्षणों की खामोशी के बाद स्वामीजी ने रॉकफेलर को उनके बीते हुए जीवन से सम्बन्धित बहुत-सी बातें बतायीं, जो स्वयं उनको छोड़ दूसरा कोई न जानता था। साथ ही उन्होंने राकफेलर को यह भी समझा दिया कि जो धन एकत्र किया है, वह उनका अपना नहीं है, वरन् वे उस धन के मात्र एक न्यासी हैं और उनका कर्त्तव्य है जगत् का हित करना। ईश्वर ने धनाढ्य इसलिए बनाया है कि वे लोगों की सहायता और सेवा का सुयोग पा सकें।

भला कोई रॉकफेलर को यह बतलाने का साहस करे कि उन्हें क्या करना चाहिए! वे चिढ़ गये और बिना विदा माँगे ही कमरे से बाहर निकल आये। लगभग एक सप्ताह के बाद वे फिर बिना किसी पूर्व सूचना के आये और स्वामीजी के अध्ययन कक्ष में दाखिल हो गये। उन्होंने उसी मुद्रा में बैठे देख कर उनकी मेज पर एक कागज फेंक दिया, जिसमें एक सार्वजनिक संस्था को दान के रूप में एक बड़ी धनराशि देने की योजना थी।

रॉकफेलर ने कहा,—"महाशय! अब तो आप संतुष्ट होंगे और मुझे इसके लिए धन्यवाद देंगे"। स्वामीजी ने न तो आँखें ही उठायीं और न अपनी जगह से हिले ही। कागज को हाथ में उठाकर पढ़ते हुए बोले, "बल्कि चाहिए यह कि आप मुझे धन्यवाद दें!" जनहितार्थ रॉकफेलर का यह पहला बड़ा दान था।

हमारे देश के धनी नागरिकों को भी इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए, ताकि लोगों के बीच की खाई ज्यादा गहरी न हो। यह वैषम्य धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी दूर किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के साथ दूसरों की सेवा का महान् आदर्श न केवल भगवान् लाभ में हमारी सहायता करेगा अपितु वह एक विश्व व्यापी वर्गविहीन समाज की स्थापना में भी सहायक होगा।

मैं एक बार फिर इस संस्था के कार्यकताओं से अपील करूँगा कि वे स्वामीजी के 'जीव ही शिव है' इस महान् आदर्श की आजमाइश करें। मैंने पहले ही कहा है कि हमें रत्ती भर भी अतिरिक्त समय या शक्ति का व्यय करना न होगा। हमें सिर्फ अपना मानसिक दृष्टिकोण बदल लेना होगा। इससे हमें ईश्वरोपलब्धि के मार्ग में एक महान् गति मिलेगी। डॉक्टर, नर्स

तथा सभी कर्मचारी, जो यहां काम करते हैं, इस महान् आदर्श का पालन कर सकते हैं। इससे उन्हें अपने साधन-पथ में सहायता मिलेगी और संस्थान का कार्य भी सुचारु रूप से चलेगा। रोगियों को भी, जो इस अस्पताल में इलाज कराने आते हैं, बड़ी राहत मिलेगी। मुझे आशा है कि आप सभी बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय इस महान् आदर्श की आजमाइश करेंगे।

मैं इस संस्था के डॉक्टरों, नर्सों, कर्मचारियों और प्रबन्धक समिति के सभी सदस्यों के प्रति बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे आप सबसे मिलने और वार्तालाप करने का सुअवसर प्रदान किया है।

श्रीरामकृष्ण और भारत का आध्यात्मिक जीवन

—स्वामी मुक्त्यानन्द
(बेलुड़ मठ)

जगत् के इतिहास में यह देखने में आता है कि हर एक देश या जाति का एक प्रकृतिसिद्ध ध्येय होता है जो राष्ट्रजीवन में सर्वतोमुखी विकास पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह ध्येय अज्ञात रीति से हो या सुस्पष्ट भाव से, राष्ट्रीय जनता के कार्यकलापों तथा विचार-धाराओं को अपनी सिद्धि की तरफ खींचता रहता है। देश के आचार-विचार वेषभूषा, संगीत-साहित्य, कला-विज्ञान, धर्म-दर्शन इत्यादि सब, अर्थात् देश की संस्कृति और सभ्यता, उस ध्येय से प्रभवित होकर उसी की दिशा में बढ़ते हैं। यह ध्येय राष्ट्र-शरीर का प्राण है। यदि इसकी विस्मृति हो जाए तो राष्ट्र पतनोन्मुख होता है। ऐसे मौके पर राष्ट्र की अन्तरात्मा के सतत तथा सामूहिक प्रयत्न के फलस्वरूप राष्ट्रशक्ति अपने ध्येय के रक्षणार्थ मूर्तिमान होकर एक महापुरुष के रूप में आविर्भूत होता है। उस महापुरुष के देदीप्यमान जीवन की अलौकिक ज्योति राष्ट्र में छाये अन्धकार को मिटाकर उस राष्ट्र की ध्येय-सिद्धि की मार्गदर्शिका होती है। उस महापुरुष का असाधरण व्यक्तित्व राष्ट्र के अंगांगों में एक नयी शक्ति का संचार कर देता है। जैसे वह महापुरुष राष्ट्र की पूर्वसंचित शक्तियों का आगार बनता है वैसे ही वह राष्ट्र के भविष्य-जीवन का आदर्श केन्द्र भी बनता है। और उस आदर्श से स्फूर्ति पाकर राष्ट्र की संस्कृति तथा सभ्यता का फिर से सर्वतोमुखी उत्कर्ष होता है। राष्ट्र-जीवन की कलियाँ फूल उठती हैं। ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का निदर्शन हमें श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान् बुद्ध, ईसा मसीह, पैगम्बर मुहम्मद इत्यादि महापुरुषों के जीवन में मिलता है।

आधुनिक काल में भारत में ऐसी आदर्शमूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस के रूप से अभिव्यक्त हुई। भारत का आदर्श रहा है—अध्यात्मप्रधान धर्म-जीवन।

श्री रोमाँ रोला (प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार) के वचनों में श्रीरामकृष्ण "एक नव-शारदीय (आध्यात्मिक) फल, एक नया आत्मादेश, भारत का स्वरमेल थे और इस स्वरमेल में अतीत की शत-शत राग रागिनियाँ जुटी हैं। वह अपने आध्यात्मिक जीवन की परिपूर्णता से एक नवयुग का चिह्न बनेंगे। मैं यहाँ जिस व्यक्ति का चित्र खींच रहा हूँ वह तीस करोड़ (१९२८ में)

भारतीयों के दो हजार वर्षों के आध्यात्मिक जीवन के मूर्तिमान स्वरूप थे।"

यदि हम रामकृष्णदेव के जीवन की महत्ता, गंभीरता, तथा सुविशालता को समझना चाहें तो हमें उनके आविर्भाव के पूर्वकालीन भारतीय आध्यात्म-जीवन के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए। हमें यह जान लेना चाहिए कि भारतीय अध्यात्म-जीवन की क्या रूपरेखा थी, कौन-से आदर्श लुप्त हो गए थे तथा कौन-से वर्तमान थे, उन आदर्शों का प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर किस प्रकार का था, किन आशा-आकांक्षाओं से लोगों के मन भरे थे, किस उत्साह तथा स्फूर्ति के बल पर उनका जीवन-रथ चलता था, और भारतीय समाज तथा सनातन-धर्म किस प्रकार छिन्न-विच्छिन्न होकर अधोगति को पहुँच रहे थे।

अति प्राचीनकाल से बहती हुई भारतीय जीवन की गंगा से सहस्रों धाराएँ निकल कर विभिन्न मार्गों से बहती हुई कालक्रम में मूलस्रोत से इतनी दूर तक पहुँच चुकी थीं कि लोग उनकी एकता तथा असली स्वरूप को भूल बैठे थे। जो भावनाएँ तथा आदर्श, जीवन के प्रगति-पथ पर ले जाते हैं उन्हें भी भूल जाने से भारतीय जीवन-प्रवाह में गतिरोध आ गया था और वह प्राणहीन सा दिखाई दे रहा था। लोग कालगति से आदर्शच्युत होकर त्याग-तपस्या एवं सेवा से वर्जित जीवन के कारण, अध्यात्म-जीवन के उच्च तथा उदात्त ध्येयों को ग्रहण तक नहीं कर सकते थे। धार्मिक जीवन में भिन्न-भिन्न मतों का परस्पर संघर्ष तथा विद्वेष ही दिखाई देता था। वेदोदित सुविशाल उदार तथा युक्ति-संगत, तथा अनुभवगम्य सनातन-धर्म का ह्रास हो गया था। समन्वय तथा सहानुभूति के स्थान पर परस्पर निन्दा तथा कलह ही मचे हुए थे। इस परिस्थिति के दो मुख्य कारण थे— १. भिन्न-भिन्न संस्कृति के विदेशियों के लगातार आक्रमण तथा अत्याचार और २. लगभग सहस्रों वर्षों तक भारत का राजकीय दासत्व। ऐसी अवस्था में श्रीरामकृष्ण ने राष्ट्र के मूल आध्यात्मिक आदर्शों को अपने जीवन में उतार कर राष्ट्र के आध्यात्मिक जीवन को अनुप्राणित किया तथा प्रगतिशील बनाया। उनका जीवन समस्त अध्यात्मतत्त्वों का आगार और वेद-वेदान्तों का प्रत्यक्ष तथा सजीव निदर्शन था। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है, कालवश नष्ट हुए इस सनातन धर्म के सार्वलौकिक, सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक स्वरूप को अपने जीवन में अभिव्यक्त करके विश्व के सम्मुख सनातन-धर्म के सजीव दृष्टान्त-स्वरूप अपने जीवन को रखते हुए, जनता के चिरहित के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण अवतीर्ण हुए"। अपने महान धर्म में श्रद्धाहीन तथा धर्म के बारे में भी प्रमादुवर्तनशील बने हुए भारतीयों के मन में श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष उज्ज्वल आदर्श ने एक नया उत्साह भरा तथा सनातन-धर्म प्रणीत उदार अध्यात्म-जीवन में नयी उत्साहपूर्ण श्रद्धा उत्पन्न की।

श्रीरामकृष्ण के जीवन का अध्ययन किए बिना आधुनिक काल में वेद वेदान्त तथा अन्य हिन्दू अध्यात्म शास्त्रों को अभिप्राय तथा मर्म पूर्णतया समझना कठिन है। उनका जीवन भारतीय धार्मिक विचारों पर स्पष्ट प्रकाश डालता है। वेदों तथा उनके ध्येयों के वह जीवन्त भाष्य थे। भारतीय धार्मिक जीवन का एक समग्र कल्प उन्होंने अपने जीवन में समाविष्ट कर दिया था। उनमें परिपूर्णता सुशोभित थी। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सुविशाल और असंकीर्ण मनोभावना तथा लोक-सेवाभिलाषा—इन सब गुणों के वे मूर्त-स्वरूप थे। स्वामी विवेकानन्दजी के वचनों में, उनमें "श्री शंकराचार्य जी की अद्भुत एवं तीक्ष्ण,

पारदर्शी मेधा तथा भगवान बुद्ध के विशाल एवं गम्भीर हृदय का ऐक्य हुआ था।" निरक्षर होने पर भी उनकी अनुभवी व तत्त्वदर्शी विशाल बुद्धि ने ऐसे महान तत्त्वों का आविष्कार किया जिनसे भारत के तथा विदेशों के परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले सब मतसंप्रदायों के समन्वय की संभावना हुई है। उनका उदार हृदय बोल उठा—'सब सम्प्रदायों में एक ही ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर आत्मा के रूप में विराजमान है।' उनका प्रेमपूर्ण हृदय समग्र विश्व के दीन, दुर्बल, दलित, दरिद्र तथा पतितों के लिए करुणार्द्र था। उनके मुख से ये अनुकंपा-पूर्ण उद्गार निकले, "भूखे पेटों के सामने तत्व-ज्ञान का उपदेश विडम्बना मात्र है—उनको पहले चाहिए अन्नदान फिर ज्ञानदान।.....जीव और शिव एक हैं। जीवों की सेवा शिव-ज्ञान से करो। तुम्हारा आध्यात्मिक कल्याण इसी में है। भूल से यह अहंकार न करो कि तुम किसी की सहायता कर सकते हो, अपनी जीवसेवा से केवल तुम भगवान को ही पूजते हो, अपने को ही धन्य बनाते हो।"

समन्वय के अवतार श्रीरामकृष्ण के मानस-सरोवर में अध्यात्म-जीवन की समस्त धाराएं एकत्र होकर एक महाप्रवाह के रूप में निर्गत हुईं, जिससे धर्म-क्षेत्र भारत सुफलित हुआ। श्रीरामकृष्ण ने किसी भी अध्यात्म मार्ग का तिरस्कार नहीं किया प्रत्युत अपने जीवन के माध्यम से बताया कि मूढ़ता तथा अन्धविश्वासपूर्ण भासनेवाले ग्रन्थों में भी वही सत्य छिपा है जो अति युक्ति-संगत भासने वाले उच्च मार्गों से स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने कहा, "जितने मत उतने पथ"। "यह अन्धविश्वास है" ऐसा उद्गार उनके मुख से कभी नहीं निकला। इन उदार अनुपम गुणों के कारण विभिन्न अध्यात्म पथगामी, श्रीरामकृष्ण में अपने-अपने आदर्शों की परिपूर्णता देखते थे। शैवों ने उनमें शिव का आभास पाया। वैष्णवों ने उनमें एक महान विष्णुभक्त को देखा। शाक्तों ने उनमें भक्त शिशु को देखा। तांत्रिकों ने उनको तंत्रसिद्ध पाया। ईसाइयों ने उनमें ईसा का प्रतिरूप देखा। मुसलमानों ने एक सूफी पीर को पाया। मूर्तिपूजकों ने देखा कि श्रीरामकृष्ण ने सारी धर्म-साधना काली मूर्ति की पूजा के द्वारा ही की और अद्वैतियों ने देखा कि वह समस्त नाम-रूप के परे निर्गुण-निराकार ब्रह्म में सदा लीन रहते थे। श्रीरामकृष्ण भक्तों को अनन्य भक्त जान पड़ते थे तो ज्ञानियों को परमज्ञानी। कर्मनिष्ठ जनता ने उनमें एक बड़े कर्मयोगी को देखा तो योगीजन उनको सदा सहज समाधिमग्न पाते थे। श्रीरामकृष्ण-रूपी निर्मल आदर्श (आईना) में सारे मतावलंबियों ने अपने-अपने आदर्शों, ध्येयों का प्रतिरूप स्पष्ट देखा और अनुभव किया। सच ही स्वामी विवेकानन्द ने गाया है—

शक्तिसमुद्रसमुत्थतरङ्गम् दर्शितप्रेम-
विजृम्भितरङ्गम।
संशयराक्षसनाशमहास्त्रं यामि गुरुं
शरणं भववैद्यम्॥
अद्वयतत्वसमाहित चित्तं प्रोज्ज्वलभक्ति-
पटावृतवृत्तम्।
कर्मकलेवरमद्भुतचेष्टं यामि गुरुं शरण
भववैद्म्॥
जय नरदेव, जय जय नरदेव॥

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन में समस्त विश्व के आध्यात्मिक आदर्शों का ऐक्य किया। इसके अलावा उन्होंने अपने अथाह अनुभवी ज्ञान के द्वारा परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्गों का सरलतापूर्ण शब्दों में अनोखे ढंग से समन्वय किया और सगुण-

निर्गुण, साकार-निराकार, आत्मा-परमात्मा, जीव-शिव, ब्रह्म और शक्ति इन भावनाओं का सामंजस्य दिखाया। उन्होंने बताया कि द्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा अद्वैत एक ही अध्यात्म सोपान की पद-परम्परा हैं। वस्तु एक ही है। दृष्टिकोण का ही विभेद है। फिर "जो ब्रह्म है वही काली, वही शक्ति है। भगवान मातृभाव से उसी प्रकार पूजे जा सकते हैं जैसे पितृ भाव से। जो सगुण-साकार भगवान है, वही निर्गुण-निराकार ब्रह्म भी—जैसे पानी और बर्फ। शिव या शक्ति, या ब्रह्म और माया एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। ब्रह्म जितना आवश्यक है उतनी ही माया भी, शिव की जितनी आवश्यकता है उतनी ही शक्ति की भी। 'एक राम, अनेक नाम'। विभेद केवल दर्शकों के दृष्टिकोण तथा अवस्था विशेष से ही प्रतिभात होता है। पूर्णज्ञान में भेद मिट जाते हैं।" श्रीरामकृष्ण ने बताया कि ज्ञानी और भक्त के परे विज्ञानी है और वही विज्ञानी है जो उपर्युक्त रीति से पूर्णतः भगवत्तत्त्व का साक्षात्कार कर चुका हो तथा भगवान के नित्य तथा लीला स्वरूपों में तुल्य भाव से तथा सहज तन्मय होता हो। वे स्वयं ऐसे एक महान विज्ञानी थे, यह सुस्पष्ट है। जहाँ महायोगीपुरुष भी बहुत प्रयत्न से समाधिस्थ रहना चाहते हैं, वहाँ उनका यह सतत प्रयत्न रहता था कि सहज समाधि की अवस्था से मन को बलपूर्वक कुछ निम्नस्तर पर लाऊँ जिससे लोक-कल्याण हो सके। भक्तों के साथ आनन्द कर सकूँ।

श्रीरामकृष्ण केवल संन्यासियों के आदर्श नहीं थे। पूर्ण जितेन्द्रिय, वैराग्य-सम्पन्न, काम-कांचन परित्यागी, शक्तिज्ञान के शिरोमणि विज्ञानी होने पर भी वह चारों आश्रमों के आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के लिए आदर्शभूत थे। आदर्श संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपनी पूर्वविवाहिता पत्नी को दूर नहीं हटाया। प्रत्युत अपने अस्खलित ब्रह्मचर्य के द्वारा उसे शिष्या के रूप में पास ही रखकर गृहस्थों के लिए आदर्श दाम्पत्य का पाठ सिखाया—पत्नी सहधर्मिणी है और पति-पत्नी का परस्पर धर्मजीवन में सहायक बनना कर्त्तव्य है। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने अध्यात्म-जीवन की एक नयी ही सामाजिक प्रणाली आरम्भ की। उनके जीवन के आलोक में यह भी स्पष्ट विदित होता है कि आध्यात्मिक जीवन स्वीकार करने से लोग नीरस या निरानन्दी नहीं बन जाते, क्योंकि सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के संसर्ग में निरानन्दता को कहाँ स्थान है? केशवचन्द्रसेन इत्यादि महापुरुषों विद्वानों द्वारा लोकगुरु माने जाने पर भी श्रीरामकृष्ण का स्वभाव एक पंचवर्षीय बालक का-सा था—निरभिमानी, सरल, तथा मुक्त। और वह जहां पर भी होते वहाँ आनन्द का बाजार बैठ जाता था। साथ-साथ वह कार्यदक्ष भी थे। मन से वे सदैव उच्चस्तर पर विहार करते हुए भी छोटे-से-छोटे काम को भी सुव्यवस्थित तथा सुचारू ढंग से करते थे। किसी चीज को न भूलते न किसी विषय का निर्लक्ष करते। सभी चीजों में वही आध्यात्मिक मनोयोग रहता था। कर्मसाधना के द्वारा भी ध्यानसाधना हो सकती है, यह हम उनके जीवन में देखते हैं। इन सब गुणों की भित्ति थी उनकी सत्यप्रियता, क्योंकि 'सत्यं-शिवं-सुन्दरं" अर्थात् सत्य सदा सुन्दर व मंगलकारी होता है।

श्रीरामकृष्णदेव का सर्वव्यापी आदर्श-जीवन भारत के, हो सकता है समस्त विश्व के भावी अध्यात्म-जीवन का आदर्श बनेगा, इसमें संशय नहीं। इस महान जीवन-केन्द्र से निर्गत प्रबल भक्तिधाराएँ भारत के अध्यात्म-जीवन को ही नहीं वरन् उसकी समग्र संस्कृति-सभ्यता को भी पुनर्जीवित करेंगी, जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध के आध्यात्मिक जीवन के प्रभाव से भारत के साहित्य, कला संस्कृति इत्यादि सभी विकसित हुए

थे। सनातन धर्म के विविध भिन्न-भिन्न आदर्शों ने श्रीरामकृष्ण के जीवन में सुसंगठित होकर भारत में एक नवयुग का आरम्भ किया है और सनातन धर्म का समन्वयात्मक आदर्श नूतन रूप में विश्व के सामने घोषित किया गया है। विश्वभर में श्रीरामकृष्ण के इस जीवन के सन्देशवाहक तथा घोषणाकारी श्री स्वामी विवेकानन्द जी के वचनों में—

यह नव-युगधर्म समस्त जगत के, विशेषतः भारतवर्ष के अनन्त कल्याण का कारण है और इस नव-युगधर्म के प्रवर्तक भगवान श्रीरामकृष्ण इतः पूर्व हुए समस्त युगधर्म प्रवर्तकों को पुनर्निर्मित तथा सुसंस्कृत स्वरूप हैं। वे मानव, इसमें विश्वास रखो और इसे हृदयस्थ करो। समस्तप्रकार के संशयों को दूर करके इस धर्म चक्र-प्रवर्तन के लिए कार्यरंग में कूद पड़ो।"

★

भगवत्प्रेम (२)

—स्वामी यतीश्वरानन्द

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

झूठे इष्टों का वास्तविक इष्टदेवता में विलय

हम लोगों से मेल-मिलाप करने में कितना समय गँवाते हैं। दूसरे के बारे में सोचने में हम कितना समय खर्च करते हैं? यह ध्यान जैसा ही है—उतना ही तीव्र, लेकिन इसमें झूठे चित्र और झूठी भावनाएँ होती हैं। इस तरह आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं हो सकती। हमें क्षुद्र गुड़ियाओं और कठपुतलियों को त्याग कर उस परमात्मा तक पहुँचना चाहिये जिसके हाथ में उनकी डोर है तथा जो उन्हें यह अजीब नाच नचा रहा है। अपनी ओर अनासक्त रूप से देखने पर हम पायेंगे कि हममें कैसी अजीब बातें हो रही हैं। दूसरों में समय व्यर्थ गँवाने के बदले यदि हम सारा समय इष्ट चिन्तन में लगाते, तो हमारी कैसी अद्भुत प्रगति होती। डोर पकड़ने वाले और हिलाने वाले के बिना कठपुतली का क्या है? कठपुतली का क्या महत्त्व है? अतः सभी भावनाओं को इष्ट पर केन्द्रित करने के बदले इतना राग-द्वेष, इतनी इच्छा-अनिच्छा क्यों? इष्ट सदा तुम्हारे भीतर हैं। वे कभी भी तुम्हें मझधार में नहीं छोड़ते, कभी हताश नहीं कराते, कभी दुःख और निराशा नहीं देते, लेकिन उन्हें अपना बनाना, उनके सान्निध्य में आना, एकमात्र उनके प्रति अपने को समर्पित करना चाहिये। दुर्भाग्य से, कभी-कभी ऐसा होता है कि हम में अपने इष्टदेवता के प्रति पर्याप्त प्रेम नहीं होता। हम केवल मानवों के बारे में सोचते रहते हैं और मानव कठपुतलियों के गुलाम होना चाहते हैं। यदि हम किसी दिव्य महापुरुष को अपना इष्ट बना लें, तो दृश्यमान जगत् से हमें बांधने वाले, तथा हमारी आध्यात्मिक प्रगति को रोकने वाले सैकड़ों झूठे मानव 'इष्टों' का चिन्तन करने से हम बच जायेंगे। उन सभी के ऊपर उठे बिना हम वास्तविक प्रेम व स्वाधीनता को कभी नहीं जान पायेंगे।

सर्वप्रथम, हमारा स्वयं अपने प्रति दृष्टिकोण गलत है। तब स्वाभाविक ही, हमारा दूसरों

के प्रति दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण ही जाता है। सदा सावधान रहो अपने विचारों का निर्मम विश्लेषण करो। कठपुतलियों को अपने चारों ओर अदृश्य बेड़ियाँ फैलाने तथा उनसे उन्हें बाँधने मत दो। दिन भर के अपने विचारों का अवलोकन करने पर हम पायेंगे कि इष्ट देवता के बदले सैकड़ों सांसारिक "इष्टों" ने हमारे चिन्ता-जगत् और भावना-जगत् में घर कर रखा है। हमें सच्चे इष्ट से संलग्न रहना चाहिए और झूठे इष्टों को सच्चे इष्टदेवता में विलीन कर देना चाहिए। प्रारंभिक साधक के लिए यह कितना ही पीड़ादायक क्यों न हो, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। मन के अन्तर्प्रवाह को सदा इष्ट के साथ संयुक्त रखो। तुम्हें आकर्षित या विकर्षित करने वाले सभी रूपों के स्थान पर भगवदरूप को स्थापित करो। तब तुम्हारा जीवन सुखी, आसक्ति रहित तथा सचमुच फलप्रद होगा। तब उसमें नैराश्य नहीं होगा।

कुछ लोगों का विचार कर कभी तुम सिहर उठते हो, कभी घृणा का अनुभव होता है, तो कभी प्रबल यौन आकर्षण—तथाकथित-प्रेम-का अनुभव होता है। यदि इन सभी भावनाओं को सचेतन रूप से तीव्रता से तत्काल इष्ट के साथ संयुक्त कर दो, तो शक्ति-क्षय होने से बचती है तथा इन सभी विक्षेपों से छुटकारा मिलता है। जब दूसरे लोगों के विचार मन में उठें, तो उसके स्थान पर इस का चिन्तन करो। उनके बदले सदा इष्ट के ज्योतिर्मय रूप का चिन्तन करो। इस तरह तुम शक्ति-क्षय कम करोगे। और यही नहीं, इस अभ्यास से महान आध्यात्मिक लाभ भी होता है।

हममें अभी भी बहुत अधिक देहात्म बोध है, इसलिए हम देह के सन्दर्भ में सोचते हैं। जब तुम देखो कि तुम्हारे मन में किसी व्यक्ति का विचार उठ रहा है, जो निरर्थक अथवा हानिकारक है, चाहे वह आकर्षक हो या विकर्षक लेकिन तुम्हारे आध्यात्मिक विकास में सहायक नहीं है, तो उसके स्थान पर तत्काल अपने इष्ट देवता का चिन्तन करने लगो। यह तीव्रता से करो और जप करो। हमारा समग्र ध्यान परमात्मा में लगा होना चाहिए। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक "देववाणी" में कहा है, दिनभर के लिए आवश्यक हमारा समग्र चिन्तन परमात्मा के संदर्भ में किया जा सकता है।

मानव मन सृजनात्मक है, और वह कुछ-न-कुछ अवश्य सृजन करेगा। यदि तुम इस क्रियाशीलता को सचेतन रूप से, जान बूझ कर, उच्चतर प्रकार के सृजन की सही दिशा प्रदान न करोगे, तो वह निम्न स्तर पर सृजन करेगा। सामान्य व्यक्ति की हानिकारक क्रियाशीलता और सृजनशीलता को नियंत्रित करने का श्रेष्ठतम उपाय उसकी शक्ति को उच्चतर दिशा प्रदान करना है। सृष्टि, भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक होती हैं। उच्चतम प्रकार की उच्चतर सृष्टि का प्रयास क्यों न किया जाय? हम मौलिक स्तर पर क्रियाशील होना चाहते हैं। आध्यात्मिक स्तर पर भी क्रियाशील क्यों न हों?

बंगाल के अठारहवीं सदी के महान सन्त कवि रामप्रसाद अपनी एक कविता में कहते हैं :—

"मन कहूँ तू भज काली, जैसी तेरी इच्छा हो रे।
गुरुदत्त महामन्त्र निश दिन जपा कर रे॥
शयन को प्रणाम जान, निद्रा तेरी माँ का ध्यान।

आहार करते सोचो यह आहुति श्यामा
माँ को रे ।।
कानों से जो सुनो, वे माँ के मन्त्र सारे।
पाँचाशत वर्णमयी काली वर्ण-वर्ण नाम
उसके रे।
रामप्रसाद कहे आनन्द भरे सर्वत्र माँ
विराज करे।
नगर घूमो सोचो मन में, प्रदक्षिणा
श्यामा की रे ।।

इस सुन्दर भजन का भाव यह है कि हमारी सभी क्रियाओं को परमात्मा से सचेतन रूप से जोड़ना चाहिए।

धार्मिक कट्टर पंथी मत बनो

पश्चिम के देशों में ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जो निराकार का ध्यान करना चाहते हैं। निराकार के ध्यान के सोपान के रूप में भगवान् के साकार रूपों की आवश्यकता उन्हें समझाना कठिन होता है। उनके साथ हुआ यह है कि वे उस दैवी-व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट नहीं होते जो उन सभी पर बिना प्रभेद किये थोप दिया गया है। यदि उन्हें किसी अन्य दैवी-महापुरुष का ध्यान करने को कहा जाय जो उनके स्वभाव के अनुरूप हो, तो वे उनका ध्यान करने को राजी हो जायेंगे और यह उनकी आध्यात्मिक प्रगति में अवश्य सहायक होगा। लेकिन दिव्य-महापुरुष के ध्यान से हमें धर्मान्ध नहीं बन जाना चाहिए। हमारे दृष्टिकोण में सभी दिव्य-महापुरुषों को परमात्मा की विशेष अभिव्यक्तियों के रूप में स्वीकार करने की उदारता होनी चाहिए।

हमारे अधिकांश धार्मिक अथवा सैद्धान्तिक विवाद सत्य के हमारे संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण होते हैं। हम एक वैचारिक स्तर तक उठ पाते हैं, उस स्तर से सत्य का अवलोकन करते हैं, और दूसरों से झगड़ा करने लगते हैं, जिनके दृष्टिकोण भी हम से भिन्न और संकीर्ण होते हैं। हम भूल जाते हैं कि हम चरम सत्य के अनेक पक्षों में से केवल एक को ही जानते हैं। सीमित दृष्टिकोण चेतना के स्तर विशेष के अनुसार सत्य हो सकते हैं, लेकिन वे संपूर्ण सत्य नहीं हैं। निरपेक्ष-अनन्त सत्ता के स्तर तक उठने पर ही हम पूर्ण सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं और प्रत्येक आंशिक दृष्टिकोण को समुचित स्थान प्रदान कर सकते हैं।

भारत में इस सिद्धान्त को आदिकाल से स्वीकार किया गया है, और इस देश में अधिक धार्मिक-प्रताड़णा और हठधर्मिता नहीं थी। भारत में आध्यात्मिक जीवन के लिए एक आदर्श निर्धारित करने तथा केवल एक अवतार को सत्य मानने की गलती नहीं की गई थी। सैद्धान्तिक संकीर्णता पश्चिम में आध्यात्मिकता के नाश का कारण है।

जब हम ईसामसीह की उपासना करते हैं, तब हमें ईसा-चेतना प्राप्त होती है। कृष्ण की उपासना करते हमें कृष्ण-चेतना प्राप्त होती है। रामकृष्ण की उपासना करते समय रामकृष्ण-चेतना प्राप्त होती है। और प्रत्येक हमें अनन्त-चैतन्य, परमात्मा तक पहुँचा सकती है, क्योंकि इन सभी महापुरुषों ने अनन्त के साथ अपने एकत्व की अनुभूति की थी। प्रत्येक अवतार परमात्मा तक पहुँचने का मानो एक द्वार है। यदि ईसा-व्यक्तित्व मुझे आकर्षित न करे, मेरी रुचि के अनुरूप न हो, तो मैं ईसा की उपासना से लाभान्वित नहीं हो सकूँगा और मेरा सारा आध्यात्मिक जीवन असफल हो जायेगा। मुझे उस दिव्य-महापुरुष का अनुसरण करना चाहिए, जो मेरे मानसिक गठन के अनुकूल हो तथा जो

मेरे आदर्श को पूर्ति कर सके। ईसा के अनुसरण-कारी को बुद्ध अथवा कृष्ण की उपासना करने को नहीं कहना चाहिए क्योंकि उससे उसका आध्यात्मिक जीवन निष्फल हो जायेगा। धर्मान्ध लोग प्रायः इस महत्वपूर्ण सत्य को हृदयंगम नहीं कर पाते। स्वयं अन्धे, वे दूसरों को भी अन्धे रखना चाहते हैं। विश्व के धर्मों के सभी महान अवतार और पैगम्बर उसी एक परमात्म-सत्ता की अभिव्यक्तियाँ हैं। सभी के लिए केवल एक त्राणकर्त्ता नहीं हो सकता। सभी पर एक ही परित्राता थोपना बहुत हानिकारक विचार है।

धर्मान्धता केवल अवतारों के उपासकों तक ही सीमित नहीं है। अद्वैतवादी भी धर्मान्ध हो सकते हैं। सभी के समक्ष यह घोषणा करना कि देवी-देवता तथा अवतार सब माया के कार्य होने के कारण मिथ्या हैं, मूर्खता की पराकाष्ठा है। अद्वैतवादियों को भी समग्र सृष्टि में अनुस्यूत परमात्मा को स्वीकार करना पड़ता है। बहुत से लोगों के लिए सगुण ब्रह्म उतना ही महत्त्व रखता है, जितना निर्गुण ब्रह्म। सर्वातीत निर्गुण निराकार तक पहुँचने का मार्ग सर्वव्यापी ब्रह्म से होकर ही है। सर्वप्रथम हमें परमात्मा का हमारे भीतर अनुभव करना चाहिए, उसके बाद दूसरों में और अन्त में सभी नाम रूपों का अतिक्रमण कर एकमेवाद्वितीयम् का साक्षात्कार करना चाहिए। हमें सदा याद रखना चाहिये कि नाम, रूप, उपाधियाँ आदि उसी व्यक्ति के लिए असत्य हैं, जिसने निर्गुण-निराकार का साक्षात्कार कर लिया है, दूसरों के लिए नहीं।

श्रीरामकृष्ण के सर्वसमन्वयकारी सिद्धान्त के अनुसार नाम-रूपातीत अनन्त परमात्मा सभी जीवों के रूप में, तथा जगत् और जीवों के नियामक ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त होता है। वह देवी-देवताओं के रूप भी धारण करता है। वह भगवदावतार के रूप में भी अभिव्यक्त होता है।

अनन्त परमात्मा अवाङ्मनसगोचर अर्थात् मन और वाणी की पकड़ से परे हैं। और इसका साक्षात्कार करने के लिए साधक को व्यक्त जगत से प्रारम्भ करना चाहिए तथा किसी दैवी नाम तथा दैवी रूप को स्वीकार करना चाहिए। भगवद् रूप परमात्मा की एक विशेष अभिव्यक्ति है। वह हमें क्रमशः परमात्मा तक ले जाता है। भगवन्नाम भी परमात्मा की विशेष अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार रूप रूपातीत तक ले जाता है, उसी तरह नाम नामातीत तक पहुँचता है।

हम सामान्य साधकों की समस्या यह है कि हम अपने स्त्री अथवा पुरुष रूपी व्यक्तिगत आकार से चिपके रहते हैं और किसी स्त्री अथवा पुरुष रूप-धारी देवी-देवता के साथ अपने को संयुक्त कर लेते हैं। और हम इस आरामदेह स्थिति से आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं होते। जब तक हम सर्वप्रथम हमारे तथा ईश्वर के सम्बन्ध में अपनी इस भौतिकवादी धारणा से छुटकारा नहीं पाते तबतक हम सही अर्थों में कोई प्रगति नहीं कर सकते। मैं यह नहीं कहता कि स्वयं को भक्त समझकर किसी पुरुष अथवा स्त्री-ईश्वर की आराधना करना बुरा है। यह सचमुच बहुत अच्छा और आवश्यक है, लेकिन यह न सोचो कि यह उच्चतम अवस्था है।

भले ही हम अपनी वर्तमान अवस्था में अनन्त परमात्मा का ध्यान न कर सकें; परन्तु हम कम-से-कम कुछ भावना या कल्पना तो कर ही सकते हैं। हम प्रायः यह सोचते हैं कि हमारी देह बिलकुल सत्य है, हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूप से सत्य है। सर्वप्रथम तो हम यह सोचें कि हम देह और मन से पृथक आत्मा हैं। हम अपनी आत्मा की अनन्त ज्योति स्वरूप भगवान् के यहाँ एक

ज्योति बिन्दु के रूप में कल्पना करें। तुम्हारी आत्मा के पार्श्व में तथा उसके आधार के रूप में विद्यमान एक ज्योतिसागर की तीव्र कल्पना करो। अपनी देह और मन को उसमें विलीन कर दो। हमारी सामान्य उपासना के भौतिकवाद को क्षीण करने के लिए कम-से-कम ऐसी भावना करनी चाहिए।

साधना के प्रारंभ में यह याद रखना सदा श्रेयस्कर है कि हम आत्मा हैं। जीवन-नाटक में एक भूमिका अदा करने के लिए प्रत्येक आत्मा ने एक स्थूल और एक सूक्ष्म शरीर धारण कर रखा है। जीवन का नाटक अच्छा खेला जाना चाहिए। हम यह न सोचे कि जीवन-नाटक का अर्थ केवल सांसारिक जीवन यापन करना है। वह नाटक मनोजगत् तथा आत्म-जगत् में भी खेला जाता है।

सगुण-निर्गुण ईश्वर से प्रेम

हममें से प्रत्येक ने अपने चारों ओर एक मनोजगत् की सृष्टि की है, जो हमारी दृष्टि को सीमित कर देता है। मेरा रूप कैसे बना है? मेरा व्यक्तित्व कैसे निर्मित हुआ है? इस तरह विचार करने पर हम पायेंगे कि हमारा "अहं" निराकार सत्ता में विलीन हो रहा है। महान अवतारों के जीवन का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उन सभी ने परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव किया था।

उनकी चेतना के साथ संपर्क स्थापित करने पर हम भी अपनी सीमाओं से मुक्त हो जाते हैं। हमारे सीमित अस्तित्व के बन्धन टूट जाते हैं और हम भी विराट-चेतना का अनुभव करते हैं। हम बुद्बुदों के समान हैं, लेकिन महान अवतार अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति सदा पूर्ण सजग, सागर के साथ सदा सक्रिय संपर्क युक्त पर्वताकार लहरों के समान हैं। हमारी चेतना अशुद्ध और सीमित है। उनकी चेतना शुद्ध और असीम है। व्यक्तित्व को चरम सत्ता में लीन किया जा सकता है, लेकिन समग्र परमात्मा सत्ता का व्यक्तित्व के साथ ऐक्य कभी भी नहीं किया जा सकता है। दिव्यमहापुरुष तथा हमारे सीमित अहंकार के पार्श्व में अखंड सच्चिदानन्द विद्यमान हैं। अपनी भावनाओं की तीव्रता के द्वारा हम विराट-मन को ऐसा उद्दीप्त कर सकते हैं कि उससे एक ज्योतिर्मय ईश्वरी रूप प्रकट हो जाय। अथवा यदि कोई रूप प्रकट न हो तो भी हम उसकी अवस्थिति का अनुभव कर सकें।

सरोवर में पत्थर फेंकने पर लहरों के रूप में प्रतिक्रिया दिखाई देगी, लेकिन इतना होने पर भी तुम सरोवर की सृष्टि नहीं करते। जल सदा विद्यमान है पत्थर केवल लहर पैदा करने का उत्तेजक कारण है। इसी तरह परमात्मा-चैतन्य सदा विद्यमान रहता है। जब तुम तीव्रता से प्रार्थना करते हो तो वह एक उत्तेजक का काम करती है, और निराकार से एक दिव्य आकार उत्पन्न हो जाता है। लेकिन प्रेम की तीव्रता होनी चाहिए। तीव्रता साधक जीवन के महत्वपूर्ण अंगों में से एक है। जीव की तीव्र पिपासा के कारण भगवान् उत्तर देते हैं। यही सच्ची भक्ति है।

आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर होने पर साधक पाता है कि निराकार से उत्पन्न हुआ भगवद् रूप पुनः उसी में लीन हो जाता है। तब साकार-ईश्वर के प्रति प्रेम निर्गुण-निराकार के प्रति प्रेम में परिणत हो जाता है। सच्चा भक्त सभी तथ्यों के प्रति समिचीन दृष्टि रखता है। वह जानता है कि निराकार और साकार, सगुण और निर्गुण एक ही चरम सत्ता के दो रूप हैं। सांसारिक आसक्तियों के चंगुल से छुटकारा पा कर वह समग्र हृदय और मन से भगवान् का

चिनन्त करता है। वह भगवान् के सभी रूपों से प्रेम करता है। उसके प्रेम की कोई सीमा नहीं होती।

[ब्रह्मलीन स्वामी यतीश्वरानन्द कृत 'Meditation and Spiritual life' के लेख का अनुवाद]

विज्ञान एवं मानव मूल्य (६)

—स्वामी रंगनाथानन्द
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

मानव ऊर्जा संसाधनों के तीन आयाम (६)

महाभारत हमें बतलाता है कि प्रत्येक मनुष्य में व्यक्तित्व के भीतर से उन्मीलित की जाने वाली तीन प्रकार की ऊर्जायें हैं। पहली है बाहुबलम्, मांसपेशकीय शक्ति, भौतिक ऊर्जा। यह आहार एवं व्यायाम से प्राप्त की जाती है। आप बच्चे को वस्तुओं की खींचतान द्वारा बाहुबल को विकसित करते हुए देख सकते हैं। दूसरा है बुद्धिबलम् बुद्धि की ऊर्जा—शिक्षा ज्ञान-ऊर्जा को प्रकट करती हैं, इससे आप अपने चतुर्दिक जगत् को भले या बुरे के लिए शासित एवं संचालित कर सकते हैं। आज, भौतिक विज्ञान केवल इन दो को ही जानता है, उनसे उच्च कुछ नहीं। वह उच्चतर ही श्रेष्ठतम ऊर्जा है जिसकी आज विश्व को आवश्यकता है, इसे आत्मबल या योगबल कहते है. आत्मा से प्रकट होने वाली ऊर्जा, सभी में निहित दिव्य स्फुलिंग या अन्तर में दिव्य स्पर्श से प्राप्त होने वाली यौगिक शक्ति। हमारा वेदान्त कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति में ये तीनों प्रकार की ऊर्जाएँ छिपी हुई हैं। मैं अपनी विभिन्न सभाओं में लोगों से पूछता हूँ : जब कोई आदमी आपको प्रलोभित करने के लिए छोटी या बड़ी राशि की रिश्वत लाता है तो आप में वह कौन-सी ऊर्जा है जो आपको उससे न कहने के योग्य बनाये। निश्चित ही बुद्धिबल नहीं बाहुबल की तो बात ही नहीं। ऐसी स्थितियों में बुद्धिबल बहुत दुर्बल पड़ता है। जितना ही अधिक बुद्धिबल होगा, उतनी ही अधिक संभावना प्रलोभनों में गिरने की होगी। परन्तु आत्मबल का एक औंस भी ऐसे प्रलोभनों को नकारने की हमें स्वतः स्फूर्ति देगा, यद्यपि वेदान्त के अनुसार और विवेकानन्द के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्म सिद्ध अधिकार है, परन्तु हमारे देश में अधिकांशतः आत्मबल या योगबल आज समाप्त हो गया है। यहाँ हम मानवीय मूल्यों की अवधारणा के महत्त्व को देखते हैं। अपने भीतर से आत्मबल को हम कैसे प्रकट करें, मैं अपने यथार्थ स्वरूप में अनन्त हूँ। मेरे यथार्थ स्वरूप की तुलना में रिश्वत का यह धन क्या है? रिश्वत की इस छोटी या बड़ी धन राशि से मेरी समानता करना कैसी मूर्खता है इस प्रकार कह सकने वाला दृष्टिकोण लोगों में आना चाहिए। मनुष्य की आवश्यकताओं के संदर्भ में, स्त्री या पुरुष के सांसारिक सुख के संदर्भ में हो,

प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित देवत्व से संसार की कोई वस्तु तुलना योग्य नहीं है। इसलिए संसार की किसी वाह्य भौतिक वस्तु के लिए स्वयं को बेच देने से बुरी बात स्त्री या पुरुष के लिए और कुछ नहीं हो सकता है। भारत में हममें से बहुतों ने आत्मा की महिमा के इस सत्य को भुला दिया है और अपने आप को संसार की नश्वर वस्तुओं के लिए बेच रहे हैं। रुपये के मूल्य में गिरावट लाने के बहुत पूर्व ही हमने मनुष्य का अवमूल्यन कर दिया है। यही कारण है कि भारत में भारतीय रुपया तथा भारतीय मनुष्य दोनों ही दुख भोग रहे हैं।

अतः भारत के मानव प्रकृति की गहनता के विज्ञान से यह विलक्षण सत्य प्राप्त होता है—मानव की ऊर्जाएँ तीन आयामों में निवास करती हैं—शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। गाँधी जी की ऊर्जा क्या थी ? बहुत उच्च स्तरीय बौद्धिक या शारीरिक नहीं, आध्यात्मिक जिसने उन्हें महान बनाया, वे महात्मा कहलाए। महात्मा, एक विशाल विस्तृत आत्मा। श्रीरामकृष्ण की ऊर्जा विशुद्ध आध्यात्मिक थी। वह ऊर्जा सभी बौद्धिक एवं शारीरिक ऊर्जाओं का भी पोषण कर सकती है। मानव ऊर्जाओं के तीन आयामों में से, प्रथम स्थूल शरीरिक आयाम है, परिमाणात्मक दृष्टि से यह बड़ा है। कुछ महीन भीतरी स्नायु तन्तु हैं, मात्रात्मक दृष्टि से अल्प परन्तु गुणात्मक दृष्टि से उच्च और उसमें सूक्ष्म प्रकार की अधिक ऊर्जा रहती है। मांसपेशी के पीछे रहने वाले स्नायु तन्तु को आप काट दें तो सम्पूर्ण मांसपेशी मृत है। यह सूक्ष्म प्रकार की ऊर्जा है, और मांसपेशी की स्थूल ऊर्जा का नियमन करती है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली होती है, और स्थूल की अपेक्षा अधिक आन्तरिक होती हैं। हिन्दुस्तान काहवल्स के अध्यक्ष श्री डी० के० गुप्त ने जिन्होंने इस व्याख्यान को आयोजित किया है—अपने स्वागत भाषण में, अखिल भारतीय मस्तिष्क विज्ञान सम्मेलन हैदराबाद में दिसम्बर १९९७ में 'मस्तिष्क चिकित्सा विज्ञान और उसके परे क्या' विषय पर मेरे उद्घाटन भाषण का उल्लेख किया। उपनिषदों के शांकर भाष्य के आलोक में इस विषय का अध्ययन अद्भुत है। और स्नायु के पीछे मन अवस्थित है जो और भी अधिक सूक्ष्म है तथा स्नायु एवं मांसपेशकी की अपेक्षा और भी अधिक ऊर्जा का केन्द्र है। यदि दुर्बल हैं तो सभी स्नायु दुर्बल हो जाते हैं, सभी मांसपेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं। महान मस्तिष्क चिकित्सा विशेषज्ञ सर चार्ल्स शैरिंग्टन कहते हैं कि न संस्थान समस्त ऐन्द्रिक प्रत्यक्षीकरण के परे हैं और सदा के लिए रहेगा। इस प्रकार इन तीन मांसपेशियों, स्नायु तथा मन में एक के बाद एक अपने से पूर्व की तुलना में अधिक सूक्ष्म एवं महान तथा अधिक आन्तरिक है और की तुलना में अधिक सूक्ष्म एवं महान तथा अधिक आन्तरिक है और मन के पीछे है आत्मा प्रत्येक प्राणी में शुद्ध ज्ञान स्वरूप अनन्त आत्मा शंकराचार्य ने मानव प्रकृति की गहनता के विज्ञान के इन तथ्यों के पीछे विद्यमान इस महत्त्व को प्रकट करने हेतु सटीक वैज्ञानिक शब्दों को प्रयोग किया है। यहाँ मन शब्द में दो पक्ष सन्निहित हैं अर्थात् मन और बुद्धि और बुद्धि से परे है आत्मा कठोपनिषद कहता है—ये यो बुद्धे पर तस्तु सः।

वही अपना यथार्थ स्वरूप है हम केवल उसे जानते नहीं। न जानने से वह नष्ट नहीं होता यदि आप इसे जानते हैं तो आपके लिए बहुत अच्छा। इस प्रकार उपनिषद् मानव प्रकृति के सत्य के संबंध में अपनी खोज के बारे में एक अदभुद वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं, नाभिकीय

भौतिकी में भी आइंस्टीन जड़ में आबद्ध ऊर्जा के सम्बन्ध में एक अद्भुत सूत्र प्रदान करते हैं। साधारणतः मैं इनको साथ-साथ रखता हूँ। यह छोटा सूत्र है E=MC2। नाभिकीय ऊर्जा के लिये यह एक अद्भुत सूत्र है। पदार्थ के टुकड़े में अनन्त ऊर्जा विद्यमान है, भार और प्रकाश की गति के वर्ग का गुणा का उसी प्रकार मानव प्रकृति के संबंध में वेदान्त एक अद्भुत सूत्र देता है आप इसे छन्दोग्य उपनिषद् में पाते हैं। अरविन शॉडिंजर जैसे पाश्चात्य नाभिकीय वैज्ञानिक इस सूत्र के बड़े प्रशंसक हैं। यह है—तत् त्वम असि—यह तू है। आप क्षुद्र सीमित शरीर तंत्र नहीं है, न उसके अधिष्ठान अहं है न मन या बुद्धि, आप में कुछ अनन्त तत्व है गहराई में जाइये, आप इस अनन्त आयाम को पा जायेंगे। मानव स्वरूप के सम्बन्ध में यह वेदान्ती सूत्र पश्चिम में आज सैकड़ों लोगों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है, स्त्री या पुरुष का यथार्थ स्वरूप अनन्त आत्मा। मनुष्य को उसके देह तंत्र या इन्द्रिय समुदाय की दृष्टि एवं अनुमान से गत आंकिए यह ठीक साइक्लोट्रान की तरह है जिसमें नाभिकीय ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। साइक्लोट्रान को देखकर क्या इस ऊर्जा की इस विशालता को समझ सकते हैं! यह एक सीमित लघु रचना है परन्तु उसके भीतर उत्पन्न होने वाली ऊर्जा विशालता एवं शक्ति में अपार है। उसी प्रकार मनुष्य के इस छोटे से भौतिक शरीर में इसकी गहराई में छिपी हुई अनन्त शक्तियाँ निहित है। यही इस वही तू है—"तत् त्वम् असि" सूत्र का अर्थ है। सभी बच्चों को यह महान सत्य पढ़ाना चाहिये स्वयं को क्षुद्र देह तंत्र न मानें। आप में कुछ अनन्त तत्व विद्यमान है। कितना उदात्त सत्य है। अतः कठोपनिषद् में शिक्षक-यम, शिष्य-नचिकेता से कहता है। (३ : १२)

एष सर्वेषु भूतेषु
गूढ़ो आत्मा न प्रकाशते,
दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या—
सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः

यह आत्मा सभी प्राणियों में उपस्थित है, परन्तु यह छिपी हुई है इसलिए प्रकाशित नहीं होती है, गूढ़ी—छिपा हुआ अतः न प्रकाशते प्रकाशित नहीं होता, यह लकड़ी में टुकड़े में आग की तरह है। क्या यह हमेशा ही अव्यक्त रहेगी? दूसरी पंक्ति इसका उत्तर देती है; "यह प्रकाशित होगी, इसे व्यक्त किया जा सकता है, प्रकृति ने मानव को उस ज्योतिर्मय ऊर्जा को व्यक्त करने की शारीरिक क्षमता से युक्त किया है।" कैसे? अग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया—उस बुद्धि द्वारा जिसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर सत्यों को जानने के लिये प्रशिक्षित किया है। किसके द्वारा? सूक्ष्म दर्शिभिः उनके द्वारा जो सूक्ष्म और सूक्ष्मतर सत्यों को देखने में प्रशिक्षित किए गये हैं। जब आपकी बुद्धि कुशाग्र व एकाग्र हो जाती है तो यह मानव प्रकृति की गहराइयों में छिपी हुई अनन्त आत्मा की गहराइयों में प्रविष्ट होने में समर्थ होती है तथा अनन्त आध्यात्मिक ऊर्जा का साक्षात्कार कर लेती है यही मानव विकास का लक्ष्य है। आपको बाह्य से आन्तरिक स्थूल से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर जाने में समर्थ होना होगा और अन्त में अपने स्वरूप के सूक्ष्मतम आयाम का साक्षात्कार करना होगा। अतः कठोपनिषद कहता है (३-१०-११)

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः
अर्थेभ्यश्चपरं मनः,
मनसस्तु परा बुद्धिः
बुद्धेरात्मा महान परः
महतः परमव्यक्तम्
अव्यक्तात् पुरुषः परः,

पुरुषात् न परं किंचित
सा काष्ठा सा परा गतिः

पदार्थ का नाभिकीय आयाम परा या इन्द्रियों से श्रेष्ठ है, पदार्थ के नाभिकीय आयाम से श्रेष्ठ मन है, बुद्धि, मन से श्रेष्ठ है महत या समष्टिगत बुद्धि से श्रेष्ठ है, अव्यक्त या मूल प्रकृति महत् से श्रेष्ठ है। पुरुष अनन्तात्मा अव्यक्त से श्रेष्ठ है। पुरुष से पराया श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, वही अन्तिम गति है वही अंतिम लक्ष्य है जब मन शुद्ध हो जाता है, तो वह एकाग्र हो जाता है तथा सूक्ष्मतम सत्य का साक्षात्कार करने में सक्षम हो जाता है यह प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता के अन्तर्गत है। अतः इस श्लोक तथा इससे पूर्व के दो श्लोकों के शांकर भाष्य में परा या श्रेष्ठ शब्द के अर्थ की विवेचना में तीन सटीक शब्दों का प्रयोग करते हुए अति वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न सारगर्भित वाक्य प्राप्त होते हैं। शंकर कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में ऊर्जा सूक्ष्म महान्तश्च, महानता एवम् प्रत्यागात्मा भूतश्च प्राणी की अन्तरात्मा के क्रम में संगठित रहती है। जितना ही हम मानव प्रकृति में प्रवेश करते हैं तो हम इसके अधिक सूक्ष्म अधिक विशाल एवं अधिक आन्तरिक आयामों को प्रत्यक्ष देखते है, इनमें सूक्ष्मतम अनन्त आत्मा है और वही आपका सच्चा स्वरूप है बुद्धि विचार भी अत्यन्त सूक्ष्म है सम्पूर्ण विवेक बुद्धि से ही आता है एवम् मन-इन्द्रिय स्तर से नहीं। बुद्धि का कार्य मन इन्द्रिय प्रणाली के कार्यों को संचालित करना तथा उनका मार्ग दर्शन करना है। अतः गीता कहती है— "मानव जीवन में बुद्धि ही आपका मार्ग दर्शक हो—"बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ"। सूक्ष्म विवेक का विकास करें, उसे मानव उद्देश्यों की ओर उन्मुख बलशाली संकल्प के साथ युक्त करें। उसी से चारित्रिक ऊर्जा उत्पन्न होती है।

अतः स्नायु-विज्ञान सम्मेलन के इस व्याख्यान में मैंने कहा— यहीं पर हमें अत्यधिक कमी की गई है। हमारे शरीर मन संयुक्त में अपार शक्तियाँ छिपी हुई हैं। हमारे मानसिक एवम् स्नायु संस्थान संयुक्त को उस सत्य को अपने लिये खोजने में समर्थ होना चाहिये। हम में क्षमता है, हमने वे सब उस ओर ध्यान नहीं दिया है आज हमें उस विज्ञान की आवश्यकता है— मानव उन्नति विकास एवम् परिपूर्णता का विज्ञान। भारत ने उसे युगों पूर्व विकसित कर लिया है और विवेकानन्द ने उसे जगत को वेदान्त के रूप में प्रदान किया है। विश्व इस महान देश से इस महान सत्य को प्राप्त करने के लिये लालायित है। किसी भी देश ने इतने उच्च मस्तिष्कों ने अपना समय और शक्ति मानव स्वभाव के गहन आयामों के सत्यों को तथा समस्त मूल्यों के स्रोत को समझने तथा खोजने में नहीं बिताया। वे तथा समस्त मूल्यों के स्रोत को समझने तथा खोजने में नहीं बिताया। वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। शंकराचार्य कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। इसी प्रकार उपनिषदों के ऋषि, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध और विवेकानन्द, वे महान मस्तिष्क एवम् हृदय से युक्त थे। वे हमें मानव के आध्यात्मिक विकास का विज्ञान प्रदान करते, जिससे समस्त मूल्य स्वतः ही बिना किसी प्रयास के हमके उपफल के रूप से प्राप्त होते हैं। ऐसी स्त्री या पुरुष को अपनी सहजावस्था में प्रेम मय बनने की आवश्यकता नहीं होती वह दयालु या प्रेम हुए बिना नहीं रह सकता। भारत में मूल्यों का यह सुन्दर विज्ञान और दर्शन है। अन्यथा बाहरी उत्तेजना या दबाव के कारण मूल्य हमारे जीवन में प्रकट होते हैं मेरे पिता, मेरी जाति, मेरी चर्च, मेरी राजनैतिक मान्यता मुझसे ऐसा करने को कहते हैं, इसलिए मैं करता हूँ। उसमें कोई यथार्थ मूल्य व्यवस्था नहीं है। अब तक हमने जीवन मूल्यों के रूप से बाहरी दबाव

या प्रभाव के कारण प्रकट किया है। आज हमें इन सबको बदलना है। मेरे जीवन में मूल्यों का प्राकट्य मेरे आध्यात्मिक विकास की सहज अभिव्यक्ति के रूप में अथवा मेरे दिव्य स्वभावकारी किंचिग अभिव्यक्ति के कारण होना चाहिये। यही वास्तविक चरित्र है और चरित्र आज्ञा से नहीं आ सकता, यह संसदीय नियम द्वारा नहीं आ सकता। यह मन और इन्द्रियों के अनुशासन द्वारा आन्तरिक विकास के रूप में आता है, शम और बम। एक गुलाब का पुष्प आपको सुगन्ध प्रदान करेगा उसके लिये उसे संघर्ष नहीं करना पड़ता, क्योंकि यह उसका स्वभाव ही है। इसी प्रकार जब मैं स्वयं में मूल्य विकसित कर लेता हूँ तो मैं हर स्थिति में उनको सहज भाव से अभिव्यक्त करूंगा। "मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ" मैं आपकी सहायता कैसे कर सकता हूँ" का एक सतत् दृष्टिकोण उस मनुष्य का आभूषण हो जाता है जिसने इन मूल्यों को थोड़ा सा भी प्रटक किया है। यही महान शिक्षा है जिसकी हमारे देशवासियों को आवश्यकता है।

हमारे शिक्षित समुदाय को पुनः शिक्षित करने की आवश्यकता है इसे भारत के हमारे शिक्षित लोगों का पुनर्शिक्षण भी कहता है। यह पुनर्शिक्षण आपको अभी हमारी शैक्षणिक संस्थाओं से प्राप्त नहीं होगा, परन्तु इसे एक महान् स्रोत से प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् जिसको मैंने पहले संदर्भित किया, विवेकानंद साहित्य के दस खण्ड एक अद्भुत साहित्य, शक्तिदायी, पावनकारी, एकत्वकारी और मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि गत एक वर्ष में जो कि स्वामीजी का १२५वाँ जन्मतिथि वर्ष था, अद्वैत आश्रम कलकत्ता ने १० खण्ड में बहुत सस्ता संस्करण प्रकाशित किया है। लगभग ४०,००० सैट्स तो बिक चुके हैं। मूल्य केवल १२० रुपये प्रति सैट है। पहले केवल ९० रुपये थी, फिर १०० रुपये हुई और अब १२० रुपये है। अकेले हैदराबाद में ही मैंने ४५०० सैट्स बेच दिये थे। इस साहित्य को मन लगाकर पढ़े, उसके बाद अपनी मनस्थिति का अध्ययन करें, दृष्किोण की क्या ही उदारता एवं सहानुभुति आप में आयेगी। मन में और दृष्टिकोण में प्रचण्ड परिवर्तन आयेगा ही क्योंकि यह मात्र पुस्तकों का सैट नहीं है, इनमें हृदय और मन को आंदोलित करने की शक्ति हमारे आध्यात्मिक विकास को उत्तेजित करने की शक्ति है। मानव मन के ऊपर विवेकानंद साहित्य के प्रभाव के संबंध में आप रोमा रोलाँ के वर्णन को पढ़ें तो आपको इस सत्य की कुछ अनुभूति होगी। अपनी Life of Vivekananda पुस्तक में वे कहते हैं (पृष्ठ १६२) "उनके शब्द महान् संगीत है, बीथोवन शैली के टुकड़े हैं, हैंडेल के समवेत गान के छन्द-प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत स्पर्श के से आघात की सिहरन का अनुभव किए बिना मैं उनके वचनों का स्पर्श नहीं कर सकता हूँ जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। और जब वे नायक के मुख से ज्वलंत शब्दों में निकलते होंगे तब तो न जाने कैसे आघात एवं आवेग पैदा हुए होंगे। ऐसा ही प्रभावशाली है विवेकानन्द साहित्य। गाँधीजी ने कहा है "मैंने विवेकानन्द साहित्य का बहुत गहराई से अध्ययन किया है। और उसके अध्ययन के उपरान्त भारत के प्रति मेरा प्रेम सहस्त्र गुना हो गया। "अतः हमारे देशवासी इस प्रेरणादायी साहित्य के अध्ययन की उपेक्षा करते हैं तो निकट ही प्राप्त होने वाले एक प्रचण्ड प्रेरणा स्रोत से स्वयं को वंचित करते हैं। हम अनेकों पुस्तकों के पीछे भागते रहते हैं, उनमें से कुछ तो बहुत से देशों को बहुत घटिया होती हैं। परन्तु जो निकट ही यहाँ आधुनिक भाषा या शैली में उपलब्ध है उसका

अध्ययन करने की ओर हमारे अधिकांश जनों ने ध्यान ही नहीं दिया है। आज इस शक्ति और प्रेम के निर्भर की ओर मुड़ने का समय आ गया है। यह पुनर्शिक्षण है जिसे राष्ट्र अब इस सस्ते संस्करण के रूप में उपलब्ध विलक्षण साहित्य के अध्ययन द्वारा प्राप्त करेगा।

१० निष्कर्ष :

मुझे कहते हुए हर्ष है कि हमारा राष्ट्र अब धीरे-धीरे इस दिशा की ओर मुड़ रहा है। हमारे शिक्षा मंत्री श्री नरसिंहराव उस समय २-३ वर्ष पूर्व कोयम्बटूर में नई शिक्षा नीति एवं विवेकानन्द पर एक सेमीनार में इस उन्मुखता की ओर संकेत दे चुके थे। वहाँ पर उन्होंने कहा कि वे एक रहस्योदघाटन करेंगे। वह यह कि इस नई शिक्षा नीति के पीछे, विवेकानन्द साहित्य की प्रेरणा थी विशेषकर उनकी मानव निर्माणकारी शिक्षा की अवधारणा। यह नीति तत्काल ही पूरे परिणाम प्राप्त नहीं करेगी, परन्तु सम्पूर्ण मानव संसाधन विकास की अवधारणा हमारी शिक्षा नीति में प्रतिष्ट हो चुकी है। इस प्रेरणा से हमारी शिक्षा अधिकाधिक श्रेष्ठ होती चली जायेगी। मानव निर्माणकारी शिक्षा से क्या आशय है? कब तक हमारे पास से केवल, अभियंता बनाने वाली शिक्षा चिकित्सक बनाने वाली शिक्षा बाबू बनाने वाली शिक्षा, अभिभाषक बनाने वाली शिक्षा आदि रही है। परन्तु अब से आगे हम मानव निर्माणकारी शिक्षा के लिए, एक मानव की पूर्ण शिक्षा हेतु संघर्ष करेंगे। इसलिए स्वामीजी ने शक्तिशाली मुहावरे गढ़े थे मानव निर्माणकारी शिक्षा, मानव निर्माणकारी धर्म और राष्ट्र निर्माणकारी श्रद्धा। यह समस्त प्रेरणा आप इस अद्भुत साहित्य में पायेंगे। इस मध्यानोपरान्त आपके साथ रहने में मुझे बहुत हर्ष है। मैं आप सभी के लिये स्नेह एवं शुभकामनाएँ प्रस्तुत करता हूँ। नमस्कार।

हृदय का भाव

—श्रीरामकृष्ण

एक दिन किसी रईस आदमी का नौकर कपड़े में ढकी हुई कोई वस्तु हाथ में ले मालिक के दफ्तर के एक कोने में विनीत भाव से खड़ा था। मालिक ने उसे देखकर पूछा, "क्यों जी, तुम्हारे हाथ में क्या है?" अत्यन्त संकोच के साथ नौकर ने कपड़े में से एक शरीफा निकालकर मालिक के सामने रखा; वह बोला तो कुछ नहीं पर उसके चेहरे से यह भाव स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा था कि 'मालिक अगर इसे ग्रहण करें तो मैं निहाल हो जाऊँ।' उसका भक्ति-भाव देख मालिक ने प्रेम के साथ उस फल को ग्रहण करते हुए कहा, "वाह, बहुत अच्छा शरीफा है! तुम कहाँ से ले आए?" भगवान् भी इसी तरह भक्त के हृदय का भाव देखा करते हैं। भक्ति-भाव से अर्पित की हुई सामान्य वस्तु भी वे बड़े प्रेम से स्वीकार करते हैं।

'आशा की किरण'

—मोहन सिंह मनराल
मुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का निर्वाण दिवस हमें उनकी उस अन्तिम बीमारी का स्मरण कराये बिना नहीं रहता जिस असाध्य कैन्सर को उन्होंने देह त्याग का बहाना बनाया था। श्रीरामकृष्ण के गले के इस रोग से एक पौराणिक कथा का स्मरण भी होता है जब भगवान् शिव ने विषपान किया और जगत के कल्याणार्थ उसे अपने कण्ठ में धारण किया। शिव नीलकण्ठ हुए थे मगर पुनः एक बार शिव को नीलकण्ठ होना पड़ा यह श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला से सिद्ध हुआ है।

श्रीरामकृष्ण की बाल लीला में हम उन्हें शिवरात्रि में शिव के अभिनय में शिवमय हो गम्भीर समाधि में मग्न देखते हैं, तो आगे चलकर वे जगत के कल्याणार्थ 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का मुक्ति मंत्र प्रसारित करते हैं, जिसे स्वामी विवेकानन्द एक प्रमुख साधन व साध्य के रूप में प्रतिस्थापित करते हैं। श्री ठाकुर जी के जीवन चरित में इतनी विविधता व विचित्रता के दिग्दर्शन होते हैं कि वह साक्षात् शिव लीला के समान ही प्रतीत होती है। चाहे पल-पल समाधि में डूब जाना हो या जीवों के प्रति अकारण दया व करुणा से द्रवीभूत हो जाना हो। चाहे शुद्धात्मा भक्तों के प्रति तीव्र व्याकुलता हो या फिर पापी-तापियों के प्रति कल्पतरु के समान व्यवहार। वे हर दशा में शिव के समान एक ओर निराकार के छोर को पकड़े रहते हैं तो दूसरी ओर जीवों को समझ में न आ सकने वाली लीलाओं में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने शिव की गृहस्थी के समान विवाह संस्कार को मात्र पवित्र ही नहीं किया अपितु उसे वंदनीय भी बना डाला। उनका शिवत्व उनकी शक्ति के रूप में दैवीय मातृत्व का रूप धारण कर पतीत पावनी निर्मल गंगा के समान प्रवाहित हुआ जो युगों के लिये धराधाम को पाप-ताप से मुक्ति दिलाता रहेगा।

श्री श्री माँ सारदा ने श्री ठाकुर के इस रोग धारण के बारे में जो कुछ कहा था उसका सार संक्षेप यह है कि श्रीरामकृष्ण देव ने करुणार्द्र हो जगत के पाप-ताप अपने उपर ले लिये इसी कारण उन्होंने ऐसे असाध्य रोग की यंत्रणा उठाई। स्वयं श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था कि वे सारे जगत के लिये सह गये हैं अब किसी को सहना नहीं पड़ेगा। सारे संसार की पीड़ा अपने ऊपर ले लेने वाले दयासिन्धु ने जीव के लिये शिव होने का द्वार उन्मुक्त कर दिया क्योंकि जबतक जीव स्वयं सहन करने व त्याग में प्रतिष्ठित होने के लिये तैयार नहीं होता उसका बंधन छिन्न नहीं हो सकता है। जब भगवान् ने स्वयं आकर यह सब कर दिखाया तो प्रत्येक जीव के यह एक अनिवार्य शर्त है कि उसे अपनी मुक्ति का द्वार स्वयं उन्मुक्त करना है।

श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी इसी बीमारी के दौरान अपनी पवित्र साधना स्थली दक्षिणेश्वर का परित्याग कर कलकत्ता के निकट काशीपुर के उद्यान भवन में निवास किया था। उनके इस निवास का एक खास अर्थ था। एक ओर जीवों के प्रति अपनी कृपा का मुक्तहस्त से वितरण में लगे थे तो दूसरी ओर अपने भावी संघ के गठन और प्रशिक्षण का अन्तिम व निर्णायक कार्य इसी स्थल पर किया गया था। इस कार्य हेतु उन्होंने सर्व-प्रथम अपनी शक्तिरूपा लीला सहधर्मिणी पूजनीया श्री श्री माँ सारदा देवी व द्वितीय अपने भावी संदेशवाहक वीरधीर तथा नरश्रेष्ठ स्वामी विवेकानन्द को तैयार कर उत्तरदायित्व सौंपा था।

इसी परिप्रेक्ष्य में एक दिन उन्होंने श्री माँ से कहा—क्या मुझे ही सब कुछ करना होगा तुम कुछ भी न करोगी। तुम कीड़ों की तरह अंधेरे में बिलबिला रहे जीवों की ओर देखना। और इसी अवस्था में उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से कहा था—आज तुम्हें सब कुछ सौंपकर मैं फकीर हो गया हूँ। तुम इस शक्ति से माँ का कार्य करोगे। आगे चलकर हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण देव के लीला संवरण के उपरान्त श्री श्री माँ के श्रीभक्त स्वामी जी ने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया और उस संगठन को शिव ज्ञान से जीवकल्याण का शक्तिशाली केन्द्र बना दिया जिसका निर्माण श्री ठाकुर की इस बीमारी के दौरान हुआ था।

आज हमारे सामने उनका पूरा जीवन चरित है, उनकी किंचित भी समझ में न आने वाली लीला है। आज हमारे सामने वह महान् संगठन है जिसके माध्यमम से वे स्वयं कर्म निरत हैं। हमारे लिये इस मुक्तिदाता के प्राणपण त्याग की वह महान् घटना है जिसके स्मरण मात्र से हमारा शोक मोह और अज्ञान दूर हो सकता है। क्यों न हम श्री माँ की इस वाणी को अपने जीवन में आशा, उत्साह की एक किरण मानकर चलें कि इस बार ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) का आगमन पंडित, मूर्ख, धनी, निर्धन, पुण्यात्मा, पापी-तापी सभी के लिये हुआ है। मलय पवन बह रहा है जो भी अपनी नौका का पाल खोल देगा अर्थात् उनके श्री चरणों में शरणागत होगा वह उनकी कृपा वारि का स्पर्श पा जायेगा। यही इस अवसर की एकमात्र सार्थकता है कि वह किरण हमारे जीवन को आलोकित कर जाये। जय रामकृष्ण।

वस्तुतः सभी जीवों का यथार्थ स्वरूप एक ही है, किन्तु अवस्था भेद के अनुसार वे चार दर्जे के होते हैं—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त तथा नित्यमुक्त।

—श्रीरामकृष्ण देव

श्री वल्लभाचार्य और वैष्णव धर्म

प्रव्राजिका श्यामाप्राणा
(श्री सारदा मठ, दक्षिणेश्वर, कलकत्ता-७०००७६)

जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करने और धर्म के मर्म को समझने के कार्य में हजारों लोग मर मिटे हैं। इस खोज में कितनों ने संन्यास लिया, सन्त बने, त्यागी, पण्डित और आचार्य हुए। दिशा सबकी एक थी—'ईश्वर लाभ या आत्मोपलब्धि।' अब प्रश्न यह है कि धर्म के माने क्या है? इसका उत्तर स्वामी विवेकानन्दजी ने सहज भाषा में दे दिया है, "जिसके द्वारा व्यक्ति और समष्टि की उन्नति हो, जो सबके लिए कल्याणप्रद हो, वही धर्म है, शेष सभी अधर्म हैं।" उनका दूसरा उत्तर है, "जो हमारे शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को शक्ति प्रदान करता है, वही सच्चा धर्म है। धर्म ही हमारे देश का मेरुदण्ड है। केवल आचार-व्यवहार को धर्म नहीं कहा जा सकता।"

वैष्णव धर्म आन्दोलन के प्रवर्तक

आचार्य वल्लभ का जन्म १४०१ ई० में हुआ। गोदावरी तटवासी सुप्रसिद्ध तेलुगु ब्राह्मण पण्डित उनके पूर्वज थे, जो कंकरवाड़ा ग्राम में निवास करते थे। उनके पिता का नाम था कम्भपाटि लक्ष्मण भोटलु और उनकी माता का कम्भपाटि एल्लम्मगारु। दोनों ही परम भक्त, धार्मिक एवं निष्ठावान् साधक थे।

जब वल्लभाचार्य के माता-पिता काशी यात्रा को जा रहे थे उसी समय उनका जन्म मार्ग में मध्यप्रदेश में रायपुर के समीप चम्पारण्य नामक स्थान में हुआ। वल्लभ के जन्म के बाद वे लोग काशी पहुँच कर वहीं बस गए। बालक की शिक्षा-दीक्षा वाराणसी में ही हुई। पाँच वर्ष की आयु में उनका उपनयन हुआ और उसके साथ ही वेद-शास्त्रों की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गयी। वल्लभ ने हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं में अपार पाण्डित्य प्राप्त किया। वे निर्भीक थे और साथ ही कुशाग्र-बुद्धि से सम्पन्न थे। बचपन से ही उनमें शास्त्रों की भलीभाँति व्याख्या करने की क्षमता थी। यह धुरन्धर बालक दस वर्ष की आयु में ही शास्त्रार्थ में बड़े-बड़े नामी पण्डितों को भी परास्त कर दिया करता था। ग्यारह वर्ष की आयु में उनके पिता चल बसे।

बड़े होकर उन्होंने पण्डितों से शास्त्रार्थ करने हेतु सम्पूर्ण भारत का दौरा किया। ऐसी ही एक यात्रा के दौरान उन्हें विजयनगर राज्य की पण्डित-सभा में शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रण मिला। वैष्णव धर्म का पक्ष लेकर उन्होंने अपनी विद्वत्ता से प्रतिवादियों के तर्कों का जिस प्रकार खण्डन किया, उसका विजयनगर सम्राट् पर गहरा असर पड़ा। सम्राट् ने वल्लभ का स्वर्णाभिषेक कर उन्हें सर्वोपरि सम्मान प्रदान किया। इसी विजयनगर में उन्हें आचार्य की पदवी मिली उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और उनके बहुत से शिष्य बन गये।

देशाटन और विजय-यात्रा

वल्लभाचार्य ने विजयनगर से यात्रा करते हुए कन्याकुमारी, पण्ढरपुर, नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, नर्मदा तट, ओंकारनाथ, महिष्मती, उज्जयनी, सिद्धवट, जोधपुर, दतिया, ग्वालियर आदि तीर्थों

के दर्शन किये। उन्हें सभी स्थानों पर सम्मान मिला। तीर्थयात्रा के पश्चात् मथुरा होते हुए वे गोकुल पधारे। गोकुल में उन्हें भक्तिमार्ग को पुष्ट करने की भगवान् की आज्ञा मिली। स्वप्न में श्री भगवान् ने उन्हें स्वयं मन्त्रोपदेश दिया, जिसके द्वारा जीवों का ब्रह्म के साथ सीधा सम्बन्ध जुड़ जाता है। यहाँ पर कुछ भक्त उनकी शरण में आये। गोकुल में रहते हुए वल्लभाचार्य धर्म-साधना एवं शास्त्र-प्रणयन में लगे रहे। कुछ समय पश्चात् वे फिर परिव्राजक होकर तीर्थपर्यटन के लिए निकल पड़े। उन्होंने पहले व्रजमण्डल की परिक्रमा की। इस परिक्रमा में व्रजभूमि के सभी तीर्थों के दर्शन किये। तत्पश्चात् भक्तिमार्ग का प्रचार करने के लिए वे दक्षिण की ओर अग्रसर हुए। गुजरात, काठियावाड़ (सौराष्ट्र) और पश्चिम में सिन्ध प्रदेश में अनेक बड़े नगरों में जाकर उन्होंने पण्डितों से शास्त्रार्थ किया और भक्तिमार्ग का जोरों से प्रतिपादन किया।

सम्पूर्ण दक्षिण की यात्रा समाप्त करके आचार्य ने उत्तर और पूर्व के तीर्थों की यात्रा की। उत्तराखण्ड के तीर्थ कुरुक्षेत्र, ऋषिकेश, टिहरी, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि के दर्शन करते हुए वे हरिद्वार आये। उसके बाद नैमिषारण्य आदि तीर्थों के दर्शन करते हुए उन्होंने जगन्नाथजी के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। जगन्नाथ क्षेत्र से फिर दक्षिणी प्रदेशों की यात्रा समाप्त कर वे पण्ढरपुर में श्री विट्ठलजी के दर्शन करने को आये। इस भ्रमण के दौरान वे दण्ड, मेखला, जटा, कृष्णाजिन आदि धारण करते थे और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ब्रह्मचारी वेश में ही रहा करते थे।

विवाह का प्रस्ताव

इस बार जब वे पण्ढरपुर में श्री पाण्डुरंग के दर्शनों को आये, तो उन्हें विवाह कर लेने का आदेश मिला। उन्होंने उसे स्वीकार किया। तदुपरान्त पण्ढरपुर से गुजरात और काठियावाड़ प्रदेशों में वैष्णव भक्तिमार्ग का उपदेश और प्रचार करते हुए वे अनेक शिष्यों के साथ पुष्कर तीर्थ पहुँचे। वहाँ से वे व्रजभूमि में पधारे। इस बार गोवर्धन में उन्हें श्री गोपाल का दर्शन प्राप्त हुआ। वहाँ वे श्री गोपालजी की पूजा-सेवा में लग गये। बाद में श्री माधवेन्द्रपुरी को गोवर्धनजी की पूजा-सेवा का भार सौंप वे एक बार फिर देश-भ्रमण के लिए निकल पड़े। व्रजमण्डल से उत्तराखण्ड के तीर्थों का दर्शन और धर्म-प्रचार करते हुए वे पुरी में श्री जगन्नाथ के दर्शन को पहुँचे। तत्पश्चात् वे काशी में आकर ठहर गये।

विवाह

काशी में श्री पाण्डुरंग के आदेशानुसार उन्होंने अपने सजातीय श्रीदेव भट्ट नाम के तेलुगु ब्राह्मण पण्डित की सर्वगुणसम्पन्ना कन्या लक्ष्मी देवी के साथ विवाह किया। इस कन्या ने बाद में दो पुत्रों को जन्म दिया। कुछ समय काशी में निवास करने के बाद आचार्य फिर देश-भ्रमण के लिए चल दिये। तीसरी बार गुजरात और काठियावाड़ होते हुए उत्तराखण्ड में केदारनाथ, बद्रीनारायण के दर्शन कर वे पुनः गोकुल पधारे। गोकुल से जमुनाजी के किनारे-किनारे आगरा होते हुए वे प्रयाग पहुँचे और संगम के उस पार यमुनाजी के तट पर अरैल नामक ग्राम में रहकर अनेक ग्रन्थों की रचना की। कुछ समय बाद वे काशी लौट आये।

सूरदासजी के साथ भेंट

गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का मंदिर बन जाने के बाद एक बार वल्लभाचार्यजी गऊघाट पर उतरे। वहाँ सूरदासजी उनसे मिलने आये और अपने द्वारा रचित एक पद उन्हें गाकर सुनाया। आचार्य ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना शिष्य बना

लिया और भागवत की कथाओं को गेय पदों में रचने का आदेश दिया। सूरदासजी की सच्ची भक्ति एवं पदविन्यास के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आचार्य ने उन्हें अपने श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन-सेवा का भार सौंप दिया। इस मन्दिर का निर्माण आचार्यजी के शिष्य पूरणमल (खत्री) ने गोवर्धन पर्वत पर संवत् १५७६ में किया था।

चैतन्यदेव के दर्शन के लिए प्रयाग जाना

जब आचार्यजी अरैल में निवास कर रहे थे, उसी समय श्री गौरांग महाप्रभु भी प्रयाग में आए हुए थे। चैतन्यदेव के भक्ति-भाव की प्रशंसा सुनकर वल्लभाचार्य कुछ शिष्यों के साथ स्वयं उनसे मिलने गये और वहाँ जाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में प्रणाम किया। दोनों में परस्पर प्रेमालाप हुआ। आचार्य ने महाप्रभु को शिष्यों सहित अपने निवास (अरैल) पर पधारने का निमन्त्रण दिया। महाप्रभु ने यह निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया और आचार्य के साथ यमुना-पार अरैल के लिए निकल पड़े। अरैल के ग्रामवासियों ने अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ महाप्रभु का स्वागत किया। आचार्य ने महाप्रभु एवं शिष्यों को बड़े प्रेम से अपने निवास पर लाकर भोजन कराया।

संन्यास व्रत

कुछ समय पश्चात् आचार्य काशी लौट आये। वहाँ उन्होंने संसार को त्यागकर संन्यास ग्रहण किया और इस प्रकार त्याग के अति उच्च आदर्श को अपने जीवन में स्थापित किया। उन्होंने अपने आदर्श के द्वारा निवृत्ति मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रूप में पुष्ट किया।

यह आचार्यजी की संक्षिप्त जीवनी हुई। अब हम उनके दार्शनिक सिद्धान्त, उनकी रचनाओं तथा उनके वैष्णव धर्म के प्रचार-कार्य पर चर्चा करेंगे।

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय

आचार्य वल्लभ ने रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामिन् आदि सम्प्रदाय-प्रवर्तकों से प्रेरणा पाकर वैष्णव धर्म को अपनाया। इनका सम्प्रदाय शुद्धाद्वैत कहलाता है। इनकी आराधना पद्धति को पुष्टिमार्ग कहते हैं।

पुष्टिमार्ग

वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद की माया को अस्वीकार कर ईश्वर के अस्तित्व और सान्निध्य को ही सत्य माना। उन्होंने रामानुजाचार्य के आत्मोत्सर्ग की चेष्टा में मनुष्य की सहज शक्तियों का ह्रास और निस्सहायता देखी। हृदय की अनुभूति द्वारा उन्हें प्राप्त करने हेतु आराधना को साधना बनाकर ईश्वर के अस्तित्व एवं सान्निध्य पर अपने विश्वास को पुष्ट किया। वास्तव में वैष्णव धर्म का यह रूप, जिसे वल्लभाचार्य ने प्रस्तुत किया है, सर्वग्राह्य, सर्वमान्य और सर्वसुलभ है।

दक्षिण के बहुत से वैष्णव सम्प्रदायों से वल्लभाचार्य प्रभावित हुए होंगे। उनका अनुसरण करते हुए उन्होंने अपने प्रतिष्ठित मन्दिरों में पूजा-आराधना-सेवा प्रचलित की। दक्षिण भारत के वैष्णव सम्प्रदायों की भक्ति में जो वात्सल्य-भाव एवं दास्य-भाव थे, वे सूरदास के पदों में पूर्णतया अभिव्यक्त दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी साहित्य का मध्ययुग सर्वाधिक ज्योतिर्मय माना जाता है और इसके निर्माता वल्लभाचार्य हैं। वल्लभ सम्प्रदाय तथा उसके अष्टछाप कवियों की देन हिन्दी साहित्य के इतिहास में अद्वितीय है। वल्लभाचार्य ने अपने भक्ति-सम्प्रदाय की ओर उत्तम कवियों को आकृष्ट कर केवल हिन्दी साहित्य में नहीं, वरन् उत्तर भारत, राजस्थान, गुजरात और काठियावाड़ आदि प्रदेशों में भी अपने प्रभाव का विस्तार किया। आज भी इन प्रदेशों में उनके

सम्प्रदाय के लाखों अनुयायी हैं। वल्लभाचार्य तथा उनके वंशजों द्वारा स्थापित मन्दिरों तथा बैठकों से असंख्य भक्त अपने हृदय में शक्ति एवं आनन्द का लाभ उठा रहे हैं।

दार्शनिक सिद्धान्त

विक्रम सम्वत् १५वीं एवं १६वीं शताब्दी में वैष्णवधर्म के आन्दोलन के प्रवर्तकों में वल्लभाचार्य प्रधान थे। यह आन्दोलन देश के एक छोर से शुरू होकर अल्प समय में ही दूसरे छोर तक फैल गया था। रामानुज से लेकर वल्लभ तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य हुए, सभी का लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और विवर्तवाद से छुटकारा पाना था, जिसके अनुसार भक्ति भी अविद्या या भ्रान्ति ही ठहरती थी। शंकराचार्य ने केवल निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी। वल्लभ ने ब्रह्म में ही सब धर्म माने। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्मकृति कहा। अपने को अंश रूप में जीवों में बिखराना ब्रह्म की लीलामात्र है। "अक्षर ब्रह्म अपने आविर्भाव एवं तिरोभाव की अचिन्त्य शक्ति से जगत् के रूप में परिणत भी होता है और इसके परे भी रहता है। वह अपने सत् चित् आनन्द तीनों स्वरूपों का आविर्भाव एवं तिरोभाव करता रहता है। जड़ में केवल सत् का आविर्भाव रहता है और चित् एवं आनन्द दोनों का तिरोभाव। इसी कारण माया कोई वस्तु नहीं है।"

उनके मतानुसार—"श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो सब गुणों से सम्पन्न होकर 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है, अतः वही श्रेष्ठ रूप है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की सब लीलाएँ नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए 'व्यापी वैकुण्ठ' (जो विष्णु के वैकुण्ठ से ऊपर है) में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। गोलोक इसी व्यापी वैकुण्ठ का एक खण्ड है, जहाँ नित्यरूप में यमुना, वृन्दावन, निकुंज इत्यादि सभी कुछ हैं। भगवान् की इस 'नित्य लीला सृष्टि' में प्रवेश पाना ही जीव की सबसे उत्तम गति है।"

शंकराचार्य ने निर्गुण को ही ब्रह्म का पारमार्थिक या असली रूप कहा और सगुण को व्यावहारिक या मायिक रूप। वल्लभाचार्य ने इसे उलटकर सगुण रूप को असली पारमार्थिक रूप बताया और निर्गुण को ब्रह्म का अंशतः तिरोहित रूप कहा। उन्होंने प्रेममिश्रित भक्ति को स्वीकार किया।

श्री वल्लभचार्य प्रवर्तित पुष्टिमार्ग

प्रेम-साधना में वल्लभाचार्य ने लोक-मर्यादा एवं वेद-मर्यादा दोनों का त्याग वैध ठहराया। इस प्रेममिश्रित भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है, जब भगवान् का अनुग्रह होता है। इसी को पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसी से वल्लभ ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा।

उन्होंने तीन प्रकार के जीव माने हैं—(१) 'पुष्ट जीव', जो भगवान् के अनुग्रह पर ही निर्भर रहते हैं और नित्य लीला में प्रवेश पाते हैं, (२) 'मर्यादा जीव' जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं और और स्वर्गलोक आदि को प्राप्त होते हैं (३) 'प्रवाह जीव', जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही लगे रहते हैं।

वल्लभ का समय तथा पुष्टिमार्ग की प्रयोजनीयता

ईसा की १४वीं सदी के पूर्वार्ध में देशभर में मुस्लिम राज्य सुदृढ़ हो चुका था। हिन्दुओं का एकमात्र स्वतन्त्र और प्रभावशाली राज्य दक्षिण में विजयनगर रह गया था, परन्तु बहमनी सुलतानों के पड़ोस में होने के कारण इस राज्य के दिन भी थोड़े ही दीख पड़ते थे। इसलामी संस्कार धीरे-

धीरे जमते जा रहे थे। सूफी पीरों द्वारा सूफी-पद्धति की प्रेम-भक्ति का प्रचार कार्य धूमधाम से बढ़ रहा था। दूसरी ओर 'निर्गुण पन्थ' के सन्तगण वैदिक विधियों से जनता की आस्था हटाने में जुटे हुए थे। ऐसे दुष्कर समय में वल्लभ को सामान्य मनुष्य के लिए वेदमार्ग या मर्यादा-मार्ग का अनुसरण अत्यन्त कठिन दिखाई पड़ा। यही कारण था कि वल्लभाचार्य ने देश-काल को भली-भाँति समझते हुए अपने पुष्टिमार्ग का गठन किया।

वल्लभाचार्य रचित ग्रन्थ

१. 'पूर्वमीमांसा भाष्य',

२. 'उत्तर मीमांसा भाष्य' या ब्रह्मसूत्र भाष्य' जो 'अणु भाष्य' के नाम से विख्यात है। उनके शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादक यही प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ है,

३. श्रीमद्भागवत की सूक्ष्म टीका एवं सुबोधिनी टीका,

४. तत्त्वदीप निबन्ध,

५. सोलह छोटे-छोटे प्रकरण ग्रन्थ।

उपसंहार

यद्यपि भागवत धर्म का प्रचार महाभारत काल में ही हो चुका था और अवतारों की धारणा देश में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी; पर वैष्णव धर्म के साम्प्रदायिक स्वरूप का गठन दक्षिण भारत में हुआ। वैदिक परम्परा के अनुकरण पर अनेक संहिताएँ, उपनिषद्, सूत्र आदि ग्रन्थ तैयार हुए। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्तिमार्ग में गोपियों के जैसा प्रेम मधुर भाव को प्रकट करने में सहायक बना। इसी के साथ सूरदास के पदों के द्वारा वात्सल्य और दास्यभाव का भी प्रचार हुआ। वल्लभाचार्य ने समय की आवश्यकता को देखते हुए वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए पतनोन्मुख भारतीय सभ्यता को पुनः प्रगति की ओर उन्मुख किया। खोयी हुई आध्यात्मिक शक्ति का संचार करके उन्होंने मानव हृदय को शान्ति और आनन्द से पूर्ण कर दिया। व्यष्टि और समष्टि की सर्वांगीण उन्नति के लिए अथक प्रयास करते हुए उन्होंने अपने जीवन को 'बहुजन सुखाय बहुजन हिताय' खपा दिया। □

(विवेक ज्योति, वर्ष २८, अंक-४ से साभार—सं०)

पहाड़ी पर धर्म का उपदेश

1. धन्य हैं वे जो मन के दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।
2. धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे।
3. धन्य हैं वे जो शोक करते हैं; क्योंकि वे शान्ति पाएँगे।
4. धन्य हैं वे जो धर्म के भूखे और प्यासे हैं; क्योंकि वे तृप्त किये जाएँगे।
5. धन्य हैं वे जो दयालु हैं; क्योंकि उन पर दया की जाएगी।
6. धन्य हैं वे जिनका मन शुद्ध है; क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे।
7. धन्य हैं वे जो मेल कराने वाले हैं; क्योंकि वे परमेश्वर की सन्तान कहलाएँगे।
8. धन्य हैं वे जो धर्म के कारण सताये जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।
9. धन्य हो तुम जब मेरे कारण मनुष्य तुम्हारी निन्दा करें, तुम्हें सताएँ और झूठ बोलकर तुम्हारे विरोध में सब प्रकार की बुरी बात कहे।

—प्रभु ईसा मसीह

भारत के मीलपत्थर

कितने विनम्र थे अंजनिपुत्र हनुमान

—सूर्यकान्त बाली

जो हनुमान अपने आराध्य राम की तरह अपने भक्तों के द्वारा दिन-रात पूजे जाते हों, हर मंगलवार को जिनकी स्तुति में सारे भारत में विशेष पूजाएँ-अर्चनाएँ होती हों, उन पवनपुत्र हनुमान को भारत के मीलपत्थरों में गिनकर आखिर हम साबित क्या करना चाहते हैं? भारत की सभ्यता के विकास में उनका कौन-सा योगदान हम बताना चाहते हैं, जो हनुमान के करोड़ों भक्तों को पहले से ही नहीं मालूम? बल्कि हालत तो ठीक इससे उलटी है। हमारे इतिहास पुराण ग्रन्थों के कथा-विवरणों के आधार पर हम अपने अनेक पात्रों के बारे में कई तरह की जानकारियाँ इकट्ठी करने में लगे रहते हैं, जबकि हनुमान का चरित्र कुछ ऐसा विशिष्ट है, उनके भक्तों ने उन्हें इतना ऊँचा आसन दे दिया है कि बेचारे पुराणकार हनुमान की इस ऊँचाई को नापने के लिए कई तरह की कथाओं, गाथाओं की गलियों में भटकते रहते हैं, पर नाप नहीं पाते, हनुमान को उनकी पूरी विराटता के साथ ढूँढ नहीं पाते। एक सीधे सादे चरित्र के साथ किस कदर खिलवाड़ की जा सकती है, उसी का नमूना हनुमान का चरित्र है, जो हमारे पुराणकारों ने शास्त्रीय बनाने के फेर में हद दर्जे तक उलझा दिया है, जबकि लोगों के स्तर पर हनुमान का चरित्र अत्यन्त लोकप्रिय, अत्यन्त मनोहारी और परम आराध्य रामभक्त का है। इसमें मजेदार यह है कि लोगों ने इस बात की परवाह नहीं की कि हनुमान को शास्त्रीयता देने के प्रयास में पुराणों ने हनुमान का सारा चरित्र कितना ऊपर नीचे कर दिया है। उन्हें तो बस उस हनुमान का पता है, जो अंजनिपुत्र हैं, केसरीनन्दन हैं, ज्ञानगुणसागर हैं, गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में 'ज्ञानिनामग्रगण्य' (ज्ञानियों में अग्रणी) हैं, जिन्होंने राम का दूत बनकर सीता की खोज में समुद्र लांघ दिया, लंका को जला दिया और लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा के लिए जो हिमालय से एक खास संजीवनी बूटी न मिल पाने के कारण पूरी पर्वतशिला ही अपने हाथों में उठाकर ले आये थे। पुराण चाहे जो कहते—लिखते रहें, लोगों को तो इस बात में अटूट-निष्ठा है कि हनुमान का नाम लेते ही सारे भूत-पिशाच अपना रास्ता नाप लेते हैं और सारे विघ्न क्षणभर में छूमंतर हो जाते है। जो हनुमान इस हद तक लोगों को अपनी आराधना से जोड़ चुके हैं, वे चूँकि असामान्य ही होने चाहिए, इसलिए पुराणकार उनकी असामान्य के कारण तलाशने में लग गये। कहीं उन्हें प्रकारान्तर से शिव की सन्तति माना गया तो कहीं उनका जन्म उस पायस खीर के एक अंश से जोड़ दिया गया, जो दशरथ को अग्निदेव ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ के बाद दी थी। कहीं उन्हें रुद्र का अंशावतार सिद्ध करने के लिए विचित्र कथायें सोची गई तो कहीं उनको वेदों के मरुत् देवताओं का उत्तराधिकार प्रदान कर इनकी महती बलशीलता का रहस्य ढूँढ़ा गया।

पर हनुमान इन तमाम कथाओं से ऊपर है। इन कथाओं को उनके व्यक्तित्व ने वैसे ही लांघ

लिया है, जैसे खुद हनुमान समुद्र को लांघकर उस पार जा छलांगे थे। यह देश तो क्या, किसी भी देश की जनता अपने किसी भी नायक-महानायक को बिना वजह याद नहीं करतीं, पूजने का तो सवाल ही नहीं उठता। हनुमान के जिस अद्भुत चरित्र से, जिस अद्भुत योगदान से, अपनी आज की भाषा में कहें तो भारतीय सभ्यता को उनके लिए योगदान से इस देश का हर नर-नारी हिमालय से रामेश्वरम् तक का हर नरनारी प्रभावित है, हनुमान पर फिदा है, वह है उनका दास्य भाव। जैसे श्रमणी शबरी ने प्रपत्तिभाव का परिचय इस देश की जनता को दिया, वैसे ही हनुमान ने भक्ति के दास्य भाव से हम लोगों को परिचित करवाया। यह दीगर है कि भक्ति की ये दोनों अवस्थायें दक्षिण भारत के पश्चिमी हिस्से में विकसित हुई और आज से छह हजार साल पहले एक साथ इनका बीजारोपण हुआ। भक्ति के दास्य भाव से परिचित कराने वाले इस महावानर महानायक का जन्म किसी चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को माना जाता है। ऐसे हनुमान सुमेरु पर्वत के प्रख्यात वानरश्रेष्ठ केसरी के पुत्र और उनकी पत्नी अंजनी या अंजना के, जो गौतमकन्या थी, जाये थे। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड की एक कथा (सर्ग ६६) के अनुसार केसरी की पत्नी अंजना को वायुदेव के वरदान से हनुमानजी की वायु के मानसपुत्र के रूप में प्राप्ति हुई थी ठीक वैसे ही जैसे आगे चलकर कुन्ती और माद्री को सूर्य, धर्मराज, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों के मानसपुत्रों के रूप में कर्ण सहित छह पुत्रों की प्राप्ति हुई थी।

पर दास्य भक्ति के प्रवर्तक और खुद ही उसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बन चुके हनुमान को आप कोई छोटा-मोटा वानर कहकर वैसे ही खारिज नहीं कर सकते, जैसे एक खास मूर्खता के आवेश में हमारे आज के कुछ अल्पज्ञ पर्यटन—चिन्तक विदेशियों के सामने उन्हें मंकी-गॉड के रूप में 'पेश' कर देते हैं। दास्य भक्ति कोई यूँ ही नहीं हो जाया करती। आपको कोई राम जैसे मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु दास के रूप में स्वीकार कर लें, इसके लिए कितने श्रेष्ठ गुणों का पुंज आपको होना पड़ेगा। गुण सारे वही होंगे, जो आपके प्रभु में हैं। बस, अन्तर इतना ही है कि आपने अपने को उस प्रभु का दास मन से स्वीकार कर लिया है यानी राम और हनुमान के चरित्र में कोई अन्तर नहीं, गुणों में कोई फर्क नहीं, महानता में कोई कम-बढ़ नहीं, श्रेष्ठता में कोई ऊँच-नीच नहीं। बस, इन समानधर्मा दो व्यक्तियों में से एक ने अर्थात् हनुमान ने दूसरे को अर्थात् राम को अपना प्रभु स्वीकार कर लिया है। यही हनुमान का दास्य भाव है, जो भक्ति की कठिनतम और श्रेष्ठतम ऊँचाई मानी जा सकती है। भारत को इतना ज्यादा सीख देने वाले हनुमान का यह देश भला क्यों न इस कदर दीवाना होगा कि जिस कदर वह है?

रामायण में पढ़ते हैं, चित्रों में देखते हैं तो हनुमान हमेशा राम के चरणों में सिर झुकाये खड़े हैं या बैठे हैं, पर वे परमबुद्धिमान हैं, कुशलवक्ता हैं, महावीर हैं, साथ ही अत्यन्त विनम्र हैं, हद हर्जे तक भोले हैं, इस सबके बारे में पढ़ना हो तो आपको वाल्मीकि रामायण पढ़नी होगी, जहाँ अरण्यकांड के बाद किष्किन्धा काण्ड के शुरू में ही हनुमान का प्रवेश होता है, जो युद्धकाण्ड के अन्त तक राम के साथ-साथ हैं, सक्रिय हैं। वे एक दूत के रूप में प्रवेश करते हैं और दौत्यकर्म के साथ ही उनका विवरण रामायण में खत्म हो जाता है। ऋष्यमूक पर्वत में छिपकर बैठे वानरराज सुग्रीव के दूत बनकर वे पहली बार सीता की खोज में भटक रहे राम के सामने आते हैं और अपनी चतुराई से राम और सुग्रीव में

जीवन भर की दोस्ती करा देते हैं। वाल्मीकि रामायण में हनुमान का आखिरी बड़ा काम भी दूत का हैं, जब राम अयोध्या लौटते वक्त उन्हें अपने भाई भरत के पास नन्दिग्राम भेजते हैं ताकि उनके आने की पूर्वसूचना भारत को हो सके। इन दोनों दौत्य घटनाओं के बीच उनका वह विश्व-प्रसिद्ध दौत्यकर्म है, जो उन्होंने राम की ओर से सीता की खोज के लिए किया था और जिसके कारण हनुमान का नाम ही रामदूत पड़ गया। अपने हर दौत्यकर्म में हनुमान को सफलता भी मिली और यश भी मिला। जब किष्किन्धाकाण्ड में पहली बार वे दूत बन कर सुग्रीव की ओर से राम से मिलने जाते हैं तो पहली ही मुलाकात में राम उनकी विद्वत्ता, ज्ञान और वाक्चातुरी के कायल हो जाते हैं। इस काण्ड के तीसरे सर्ग के सात श्लोकों (२७-३३) में राम ने हनुमान की वाक्यचातुरी, उनके प्रभूत वेदज्ञान और व्याकरण की सटीक जानकारी की भूरि भूरि प्रशंसा की है और कह दिया कि जिस राजा के पास ऐसा दूत है तो उसके असफल होने का सवाल ही नहीं उठता (श्लोक ३४)। राम हनुमान के इन श्रेष्ठ गुणों से इतना प्रभावित थे कि जब सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए चारों दिशाओं में वानरों की टीमें भेजी तो राम ने अपनी पहचान की अंगूठी किसी अजब विश्वास में आकर सिर्फ हनुमान को ही दी। एक दूत अपनी बात कितने आत्मविश्वास और प्रभावशाली तरीके से रख सकता है, इसका एक अनूठा नमूना (सुन्दर काण्ड के सर्ग ५१ में) उन्होंने तब दिया, जब उन्होंने रावण को जता दिया कि राम से दुश्मनी मोल लेकर उसने बड़ा महंगा सौदा किया है।

पर ज्ञान और वाग्मिता के इस अनूठे संगम हनुमान को कभी अहंकार हुआ? अहंकार हो जाये तो फिर कैसा दास्यभाव? हनुमान तो हमेशा विनम्रता और भोलेपन की मूर्ति नजर आते हैं। विनम्र इतने कि जब दक्षिण समुद्र लांघने का मौका आया तो कहने को तैयार ही नहीं कि वे उसे छलांग कर पार कर जायेंगे, जबकि दूसरे-दूसरे वानर अपनी शक्ति की खूब बड़कें मार रहे थे। जब जाम्बवान ने जगया तो जागे और एक छलांग में समुद्र पार कर गये। इतना बल, इतनी शक्ति, इतना ज्ञान, इतनी बुद्धि, पर इतनी विनम्रता इतनी अहंकारहीनता कि हनुमान के बारे में प्रसिद्ध हो गया कि उन्हें अपनी शक्ति तभी याद आती है, जब कोई उन्हें उसकी याद दिलाये। जरा विनम्रता का आलम तो देखिये। समुद्र को एक ही कूद में पार कर लिया, राक्षसों को मार गिराकर लंका में घुस गये, वहाँ युद्ध करना पड़ा तो रावण के कई सेनापतियों सहित उसके एक पुत्र अक्षयकुमार का वध कर दिया, सीता को खोज निकाला, अशोक वाटिका उजाड़ दी, रावण को भरी सभा में फटकारने का साहस दिखाया, लंका जला दी और अक्षत वापस लौट आये। जब लौट आये तो राम से क्या कहा? कुछ नहीं, सिर्फ एक वाक्य—हे रामजी, सीता को खोज लिया गया 'नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत्' (सुन्दरकाण्ड, सर्ग ६४, श्लोक ४२)। बस, बाकी बातें सब बाद में, पूछने पर और उतनी ही जितनी बतानी जरूरी थीं।

पवनपुत्र हनुमान के विराट व्यक्तित्व का वर्णन करने के लिए न यह कॉलम काफी है, और न यह कलम। और बतायें भी किसे? उन पाठकों को जो पहले से ही हनुमान के चरित्र से सराबोर हैं? पर कभी-कभी लिखने वाला मजबूर होता है और अपने ऊपर ओढ़े कर्त्तव्य से संचालित होना ही पड़ता है उसे। इसलिए हनुमान के भोलेपन के दो उदाहरण दिये बिना हमारा भी मन नहीं मान रहा।

दोनों प्रसंग सुन्दरकाण्ड के हैं। पहला है सर्ग १० में तो दूसरा १३ में है। पहला प्रसंग। हनुमान सीता को खोजते हुए रावण के महल में जा पहुँचते हैं। वहाँ उन्होंने एक कक्ष में एक श्रेष्ठ शय्या पर सोई एक परमसुन्दरी स्त्री को (जो वास्तव में मन्दोदरी थी) देखा और खुश हो गये कि बस, खोज लिया सीता को! इसके बाद क्या हुआ? प्रसन्न हनुमान ने अपनी पूँछ को पटकना और चूमना शुरू कर दिया, थोड़ा चिंघाड़ने लगे, कूदने लगे, इधर-उधर फुदकने लगे, खम्भों पर चढ़ने उतरने लगे और एक वानर की तरह बरतने लग गये (सर्ग १०, श्लोक ५४)। पर जल्दी ही उनकी अक्ल ने जोर मारा और सोचने लगे कि राम से वियुक्त सीता इस तरह आराम से नहीं सो सकती और बस फिर से लग गये सीता की खोज में।

दूसरा प्रसंग। सीता मिल नहीं रही और हनुमान निराश हो गये। सोचने लगे, जरा देखिये तो क्या-क्या सोचने लगे, कि अगर सीता नहीं मिलीं तो राम अपने प्राणों का परित्याग कर देंगे। राम जीवित नहीं रहे तो लक्ष्मण भला क्यों जीवित रहेंगे? अपने दोनों भाइयों की मृत्यु का सामाचार पाकर भारत भी नहीं बचेंगे और शत्रुघ्न भी मर जायेंगे। अपने चारों पुत्रों की मृत्यु के बाद क्या कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी ये तीनों मातायें जीवित रह पायेंगी। फिर राम के देहावसान के बाद वानरराज सुग्रीव भी मर जायेंगे। नहीं बचे तो फिर उनकी पत्नी तारा और पुत्र अंगद भी प्राण त्याग देंगे। और इस तरह क्रमशः सारे अयोध्या और किष्किंधावासी भी अपने प्राणों को त्याग देंगे। अपनी भयानक कल्पनाओं को पता नहीं भोले हनुमान ने कहाँ तक खींच दिया। सोच लिया कि मैं तो वानप्रस्थी हो जाऊँगा। या जलती हुई आग में प्रवेश कर जाऊँगा। फिर सोचने लगे कि क्यों न रावण का ही वधकर डालूँ, जो सारे झगड़े की जड़ है? बस फिर क्या था, कर डाला संकल्प कि जब तक सीता को न ढूँढ़ लूँगा, इस लंका को ही बीनता रहूँगा और इस संकल्प के बाद वे सीधे अशोकवाटिका की दीवार को फलांदने लग जाते हैं।

कैसे लगते हैं ये भोले हनुमान? कुटिल, छली और प्रपंची हृदय क्या कभी इतना भोला हो सकता है? अगर नहीं तो यह भी इतना ही तय है कि ऐसा हृदय ही दास्यभाव अपना सकता है।

(नवभारत टाइम्स, अक्टूबर, १९९४ से साभार)

सबको अपने समान देखो। साम्यभाव ही मुक्त पुरुष का लक्षण है।
ढोंगी बनने से स्पष्टवादी नास्तिक होना अच्छा है।
उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ।
भय दुर्बलता का चिह्न है।
कामना तथा स्वार्थ से ही भय की उत्पत्ति होती है।

—स्वामी विवेकानन्द

साधक के प्रश्न :
स्वामी ब्रह्मेशानन्द के उत्तर

प्रश्न : अध्यात्म-क्षेत्र में बुद्धि की दखल कितनी होनी चाहिए ?

उत्तर : आध्यात्मिक जीवन में बुद्धि की बहुत बड़ी भूमिका है। हमारे अन्तःकरण की निश्चयात्मिका वृत्ति बुद्धि कहलाती है। इसी के द्वारा हम सत्यासत्य का निर्णय करते हैं। आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ में जीवन के चरम पारमार्थिक लक्ष्य का, उसे पाने के मार्ग का तथा स्वयं के स्वरूप के विषय में निर्धारण बुद्धि द्वारा ही होता है। इसके बाद आध्यात्मिक साधना की समग्र प्रक्रिया एक प्रकार से बुद्धि के शुद्धिकरण की ही प्रक्रिया है। शुद्ध बुद्धि के द्वारा ही उसकी सहायता से परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार होता है। उपनिषद् में कहा गया है :

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ोत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः
कठोपनिषद १:३:१२

अर्थात्—यह आत्मा सभी प्राणियों में गूढ़ रूप से निहित और अप्रकाशित है किन्तु यह आत्मा सूक्ष्मदर्शियों द्वारा एकाग्र एवं सूक्ष्म बुद्धि द्वारा देखा जाता है।

साधना के विभिन्न स्तरों पर भी श्रेय-और प्रेय के बीच का शुभ क्या है, क्या ग्राह्य और क्या त्याज्य है, आदि का निर्णय बड़ी सावधानी से करना पड़ता है, और यह भी बुद्धि के द्वारा ही होता है।

शास्त्रोक्त ज्ञान मार्ग की साधना तो विशुद्ध रूप से बुद्धि पर ही आधारित है। उसमें सूक्ष्म विचार द्वारा आत्मा के स्वरूप, परमात्मा के स्वरूप तथा उन दोनों के एकत्व का निर्णय किया जाता है, जो बुद्धि द्वारा ही संभव है। लेकिन इस विचार को भी शास्त्र-सम्मत होना चाहिये, अन्यथा साधक की अपरिपक्व और अशुद्ध बुद्धि उसे विषयगामी बनाकर लक्ष्यच्युत भी कर सकती है।

आध्यात्मिक जीवन में कोरे बुद्धिवाद, बहुशास्त्र पठन, शास्त्र-व्याख्यान-कौशल आदि का बहुत कम स्थान है। तर्क-वितर्क, वाद-विवाद का उपयोग प्रारंभ में तत्त्व निर्णय और उसे अच्छी तरह समझने के लिए भले ही किया जाय, लेकिन इससे अधिक उनकी उपयोगिता नहीं है। शास्त्रों में "तर्काप्रतिष्ठानात्" नैषा तर्केण मतिरापनेयो आदि कह कर तर्क की निन्दा की है।

प्रश्न : शास्त्रीय "सूक्ष्म-बुद्धि" का क्या अर्थ है ?

उत्तर : बुद्धि के दो कार्य हैं : (१) विश्लेषण-संश्लेषण (analysis-synthesis) और (२) कार्य-कारण 'शृंखला के अनुसन्धान से एक निर्णय पर पहुँचना। विभिन्न प्रकार की बहुत-सी वस्तुओं को उनके गुण आदि के आधार पर विभाजित करना विश्लेषण कहलाता है। जैसे, प्राणियों को मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि में विभाजित करना। विभिन्न वस्तुओं को किसी सामान्य गुण

विशेष के आधार पर एक ही श्रेणी में डालना संश्लेषण कहलाता है—जैसे मनुष्य-पशु आदि सभी को 'प्राणी' की श्रेणी में मिला देना। सूक्ष्म बुद्धि वह है जो इन दोनों ही प्रकार की प्रक्रिया में गहराई तक जा सके। विश्लेषणात्मक बुद्धि के द्वारा जगत् की अन्य सभी वस्तुओं से सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को अलग किया जाता है—इस कार्य के लिए सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है। संश्लेषणात्मा बुद्धि सर्वत्र सत्ता रूप में विद्यमान आत्मा का अनुसन्धान करती है। इसी प्रकार कार्य-कारण शृंखला के चरमतम अनुसन्धान के बाद आदि कारण तक पहुँचने का कार्य भी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही संभव है। दृष्टान्त के लिए दो वाहनों की टक्कर जैसी एक सामान्य घटना को ही ले लीजिये। सामान्य बुद्धि से इसका कारण चालकों की असावधानी या इसी प्रकार का और कोई कारण निर्णीत होगा। लेकिन सूक्ष्म बुद्धि चालकों की असावधानी के कारण उनके चंचल मन, उसका कारण लोभ, काम, मोह आदि को खोज निकालेगा। भगवान बुद्ध की सूक्ष्म बुद्धि ने जरा, रोग और मृत्यु जैसी सामान्य घटनाओं का कारण खोजते-खोजते दुःख का मूल कारण तथा उसकी निवृत्ति का उपाय तक खोज निकाला था।

भगवान् बुद्ध द्वारा आविष्कृत समाधान आज पुस्तकों में उपलब्ध है, जिसे कोई भी पढ़ सकता है। लेकिन मात्र इससे ही किसी की बुद्धि सूक्ष्म नहीं हो जाती। पुस्तक पढ़ने और समझने मात्र से व्यक्ति के दुःख-कष्टों की निवृत्ति नहीं हो जाती। इसके विपरीत किसी अनपढ़ सन्त की बुद्धि भी ऐसी कुशाग्र हो सकती है कि वह आध्यात्मिक सत्यों को समझ कर आत्म सात् कर सके।

प्रश्न : आपने पथभ्रष्ट करने वाली अशुद्ध बुद्धि का उल्लेख किया। यह अशुद्ध बुद्धि क्या है? क्या सूक्ष्म बुद्धि और शुद्ध बुद्धि एक ही है?

उत्तर : कामनाएँ, वासनाएँ, राग-द्वेष, मन के पूर्वाग्रह आदि ही बुद्धि की अशुद्धियाँ हैं। वे व्यक्ति को सही निर्णय नहीं लेने देतीं। जब निश्चयात्मिका बुद्धि के निर्णय इन पूर्वाग्रहों से प्रभावित होते हैं, तब वह सही निर्णय नहीं हो सकते। इसके कारण बुद्धि की दिशा बदल जाती है। जब बुद्धि अनेक वासनाओं अथवा पूर्वाग्रहों से प्रभावित होती है, तब वह एकाग्र या सूक्ष्म भी नहीं हो पाती। जैसे एक धागा। जब वह अच्छी तरह बंटा गया हो तो उसका अग्र नुकीलासूक्ष्म, एकाग्र, कुशाग्र होता है। लेकिन जब वह बँटा नहीं गया होता, तब उसके सिरे से बहुत से छोटे-छोटे रेशे निकले रहते हैं—ऐसा अनेक-अग्रों वाला, अनेकाग्र धागा सूई में पिरोया नहीं जा सकता। यही बात बुद्धि के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये। गीता में इन्हीं दो प्रकार की बुद्धियों को व्यवसायात्मिका और अव्यवसायात्मिका बुद्धि कहा गया है।

प्रश्न : जीवन जीने के लिये है या जानने के लिये या फिर जानकर जीने के लिये।

उत्तर : जीवन जीने के लिये तो है ही, लेकिन सुखपूर्वक जीने के लिये—यह बात सभी स्वीकार करेंगे। लेकिन सुख की मान्यता भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। थोड़े से विचार से ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि बिना ज्ञान के वास्तविक सुख संभव नहीं है। अतः स्वामी विवेकानन्द जैसे मनीषियों ने ज्ञान को जीवन का लक्ष्य बताया है। अन्य लोगों ने मुक्ति को जीवन का लक्ष्य बताया है और वह भी ज्ञान से प्राप्त होती है। इस तरह जीवन जीना—जानना और जानकर मुक्त होकर जीना ये तीनों परस्पर सम्बन्धित है। प्रत्येक आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। सभी व्यक्ति जीना चाहते हैं (सत्), जानना चाहते हैं (चित्) और आनन्द चाहते हैं। ये तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित व परिपूरक हैं।

वस्तुतः जीवन की सार्थकता जानने के बाद जीने में हैं। एक सुन्दर श्लोक है :

दुर्जनो सज्जनः भूयात् सज्जनो शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान्
विमोचयेत्।

अर्थात् दुर्जन व्यक्ति सज्जन बने। सज्जन न्ति प्राप्त करे। शान्त व्यक्ति संसार के बन्धन से बँधे लोगों को मुक्त और मुक्त दूसरों को मुक्त करने का प्रयास करे।

प्रश्न : अध्यात्म का मार्ग Way of salvation (मुक्ति का मार्ग) है या way of Extinction (निर्वाण का मार्ग) है ?

उत्तर : दोनों। जिससे मुक्त होता है, उसका त्याग या विनाश तो करना ही पड़ेगा। असत्य, भ्रान्तियाँ आदि बन्धनों के विनाश के बिना मुक्ति कैसे संभव है ? बौद्ध धर्म में चरमावस्था को निर्वाण कहा गया है। वस्तुतः Salvation और Extinction, मुक्ति और निर्वाण एक ही बात के द्योतक हैं—एक सकारात्मक और दूसरी नकारात्मक अभिव्यक्ति है।

प्रश्न : क्या ईश्वर लाभ हेतु सर्वत्याग अपरिहार्य है ?

उत्तर : इस प्रश्न का स्पष्ट व असंदिग्ध उत्तर है : "हाँ"। सर्वत्याग के बिना ईश्वर लाभ असंभव है। यह प्रश्न ईश्वर-लाभ के स्वरूप के विषय में तथा सर्व-त्याग के सम्बन्ध में अस्पष्ट धारणा के कारण उठता है।

लेकिन आप त्याग से इतया घबराते क्यों हैं ? किसी-न-किसी रूप में हम सर्वदा, जीवन के प्रत्येक स्तर पर त्याग करते आये हैं और अन्त में सब कुछ त्याग कर जाना भी पड़ेगा। बाल्यावस्था से किशोरावस्था में पदार्पण करने पर बाल्यवस्था की तीव्र आसक्तियों, इच्छाओं, प्रिय वस्तुओं मान्यताओं का त्याग अनायास ही हो गया था। इसी प्रकार ऊपर की वस्तु, मान्यता का ग्रहण तथा निम्न का त्याग होता जाता है। वस्तुतः संसार की सभी वस्तुओं, सभी इच्छाओं और कामनाओं से ऊबे बिना उनके प्रति वितृष्णा, उनको त्यागने की इच्छा के उदय के बिना ईश्वर प्राप्ति की लालसा का उदय ही नहीं होता। दूसरी ओर, यदि एक बार किसी तरह ईश्वर प्राप्ति के असीम आनन्द और माधुर्य का आस्वादन या निश्चय भी यदि हो जावे तो संसार की सभी वस्तुएँ सारहीन, अलोनी, फीकी लगने लगेंगी और त्याग अपने आप हो जाएगा।

प्रश्न : मध्यम-मार्ग क्या है ?

उत्तर : मध्यम मार्ग का स्पष्ट निर्देश गीता के छठे अध्याय तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशों में पाया जाता है। इसका सम्बन्ध योग से है। अत्यधिक सोने या खाने से, अथवा बिल्कुल न सोने या उपवास करने से योग नहीं सधता। हमारे सभी आचरणों में 'अति' का वर्जन करना चाहिये। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि भोग के साथ योग को मिलाया जाय। अगर कोई व्यक्ति योग के लिये भोग का पूरी तरह त्याग करने में समर्थ नहीं है, तो वह कुछ समय के लिये इन दोनों को साथ-साथ भले ही करे, पर उसे यह स्पष्ट रूप से ध्यान रखना चाहिये कि यह आपात्-व्यवस्था, समझौता मात्र है, जिसे कभी-न-कभी समाप्त करना होगा।

प्रश्न : धर्म और विज्ञान कहीं तो परस्पर सहयोगी से दीखते हैं, पर कहीं विरोधी। दोनों में सही तालमेल कैसे बिठाया जाय ? टकराव की स्थिति में कौन वरेण्य है ?

उत्तर : जिस प्रकार भौतिक शास्त्र (Physic) और रसायन शास्त्र (Chemistry) के बीच, इतिहास और भूगोल के बीच न तो कोई मेल है

और न कोई विरोध उसी प्रकार धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध समझना चाहिए। दोनों का कार्य क्षेत्र, विधाएँ तथा लक्ष्य भिन्न हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करें, इसमें विरोध की क्या बात है ? जैसे, एक आध्यात्मिक सन्त एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए, विज्ञान की देन, वायुयान, रेल अथवा मोटर का उपयोग करे, उसमें अध्यात्म को क्या आपत्ति हो सकती है ? मन्दिर बनवाने में, धर्मग्रन्थ मुद्रणादि में, धर्म-प्रचार में, विज्ञान के ज्ञान तथा वैज्ञानिक उपकरण का प्रयोग किया जा सकता है। अध्यात्म का सम्बन्ध आन्तर्जगत से है, विज्ञान का दखल बहिर्जगत् में है।। वे एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के परिपूरक हो सकते हैं। एक वैज्ञानिक ने ही कहा है। Science simply prolongs life, religion deepens it. अर्थात् विज्ञान केवल जीवन को लम्बा या दीर्घ बनाता है, धर्म जीवन को गहराई प्रदान करता है।

इन दोनों को सह-दृष्टि से, स्वीकार करने पर टकराव की संभावना नहीं है। इन दोनों के विकृत रूपों के बीच अथवा गलत समझ के कारण ही टकराव होते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को अपने लक्ष्य के अनुरूप किसी एक का वरण करना चाहिये। यदि लक्ष्य भौतिक समृद्धि हो तो विज्ञान का और यदि आन्तरिक शान्ति व सन्तोष, तो अध्यात्म का।

प्रश्न : रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवत् आदि सद्ग्रन्थ तथ्यपरक हैं या तत्त्वपरक, समाज केन्द्रित हैं या सत्य केन्द्रित ?

उत्तर : आपने तथ्य और तत्त्व में अन्तर किया। संभवतः तथ्य से आपका तात्पर्य व्यावहारिक सत्य से है, और तत्त्व का तात्पर्य पारमार्थिक सत्य से है। पाश्चात्य दार्शनिक भाषा में इन्हें realism अथवा यथार्थवाद और idealisen या आदर्शवाद कहा जा सकता है।

आपने जिन तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है, वे तीनों पुराण है। पुराणों में चरम सत्य और तत्त्व के निरूपण के साथ-ही-साथ और भी बहुत सी बातें होती हैं जिनका सम्बन्ध व्यावहारिक जगत् एवं समाज से होता है। इस दृष्टि से ये सभी सद् ग्रन्थ तत्त्वपरक और तथ्यपरक तथा सत्य केन्द्रित और समाज केन्द्रित दोनों ही हैं। वे मोक्ष-शास्त्र होने के साथ-ही-साथ धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र भी हैं जिन दोनों का सम्बन्ध समाज से होता है।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आधारित और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि व्यक्ति अच्छा होगा तो समाज अच्छा होगा और समाज अच्छा होगा तो व्यक्ति भी अच्छा होगा। इस परस्पर सम्बन्ध को ध्यान में रख कर इन सदग्रन्थों का निर्माण हुआ है। उनका लक्ष्य है व्यक्ति और समाज दोनों ही आदर्श और सुखी हों।

प्रश्न : संसार के बिना किसी का जीवन संभव नहीं है। ऐसे में संसार का मिथ्यात्व एवं सर्वत्याग की बात कहाँ तक उचित व व्यवहार्य है।

उत्तर : अगर वन, पर्वत की गुफा, निर्जन स्थान, आश्रमादि को संसार का अंग ही माना जाय तो फिर संसार का त्याग नहीं बनता, क्योंकि कोई भी संन्यासी संसार के बाहर जा ही नहीं सकता। संभवतः आपका प्रश्न नगर, ग्राम, लोगों की बस्ती से है, जहाँ सांसारिकता एवं लोक व्यवहार चलता रहता है। संन्यासी इसका त्याग अवश्य करता है। और यह प्रश्न सभी से सम्बन्ति है।

लेकिन सर्वप्रथम तो आपकी यह मान्यता ही

संदिग्ध है कि संसार के बिना किसी का जीवन संभव नहीं है। शरीर का भरण पोषण प्रारब्ध के अधीन है तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट घोषणा की है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अर्थात् जो लोग अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मुझसे संयुक्त रहते हैं उनका योग-क्षेम मैं वहन करता हूँ। सन्तों के जीवन में ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं जहाँ भगवान् ने उनका भरण-पोषण उनकी प्रचेष्टा के बिना किया।

रही संसार के मिथ्यात्व की बात। तो संसार का मिथ्यात्व एक दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं दृष्टिगत बात है, जिसका लौकिक व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। जगत् मिथ्या है अर्थात् उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है, लेकिन व्यावहारिक सत्ता अथवा प्रातिभासिक सत्ता हो सकती है, जिससे लोक व्यवहार की कोई हानि नहीं होती। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता "प्रतीत" होता है और व्यवहार में हम कहते भी हैं कि सूर्य उगा और डूबा। लेकिन यथार्थ में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और सूर्य न तो उगता है और न डूबता है।

जहाँ तक संसार त्याग का प्रश्न है, इस विषय में दो मत हैं। पहले मत के अनुसार संसार का मिथ्यात्व निश्चित ही पर्याप्त है। याने संसार असत् है, अनित्य है, मृग-मरीचिका की तरह प्रतीति मात्र है, इसका दृढ़ निश्चय ही वस्तुतः सर्वत्याग है। संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन—अवश्य यह गहरा व सम्पूर्ण होना चाहिये—यही संन्यास है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने यही बात कही है। दूसरे मत के अनुसार इस भावनात्मक, बौद्धिक त्याग के साथ ही साथ बाह्य संन्यास—अथवा जिसे चिह्न संन्यास भी कहा जाता है,—भी आवश्यक है। आचार्य शंकर इसी मत के प्रतिपादक हैं। उनका तर्क यह है कि जब जगत् मिथ्या निश्चित हो गया तो व्यक्ति ऐसे असत् अनित्य संसार में रहेगा ही क्यों? उसके मिथ्यात्व का साक्षात्कार ही यह होगा कि वह उसे त्याग देगा। उदाहरण के लिए, यदि दूर से कोई वस्तु मनुष्य की दिखाई दे रही हो, पर पास जाने पर यदि वह काला-विषैला है, यह पता चले तो कौन उसे खाना चाहेगा?

प्रश्न : उपनिषदों के कई ऋषि ब्रह्मविद् थे लेकिन वैवाहिक जीवन यापन करते थे। विदेह का जीवन भी इसका दृष्टान्त है। तो क्या इन लोगों के लिये भी जगत् मिथ्या था?

उत्तर : एक श्लोक है :

कृष्णो योगी शुकस्त्यागी राजा जनक रामयोः।
वशिष्ठः कर्मकर्ताच ते एते ज्ञानिनः समाः ॥

अर्थात् कृष्ण तो थे योगी, शुक त्यागी थे, जनक और राम राजा थे। वशिष्ठ कर्मकाण्डी राजपुरोहित थे। (व्यवहार में इतना पार्थक्य होते हुए भी) ये सभी समान रूप से ब्रह्मज्ञानी थे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दो मतवाद हैं— एक में आसक्ति, मानसिक स्थिति को ही महत्त्व दिया गया है जबकि दूसरे मत के अनुसार बाह्य त्याग भी आवश्यक माना गया है। यही नहीं इन दो मतवादों के आधार पर दो संस्कृतियों का भी विकास हुआ है। वैदिक या ब्राह्मणिक संस्कृति में ऋषि तथा जीवन्मुक्त आदर्श थे, जबकि मागध या श्रमण संस्कृति में, बौद्ध और जैन धर्म जिसके प्रतिनिधि हैं—सर्वत्यागी संन्यासी और अर्हत् आदर्श थे। इस दूसरी संस्कृति में ब्रह्मचर्य एवं सर्वत्याग को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

वैदिक संस्कृति एवं वेदान्त में भी सांसारिक कर्मों से उपरति तथा वैराग्य के तारतम्य के अनुसार ब्रह्मज्ञानियों ब्रह्मविद् ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद् वरिष्ठ इत्यादि तारतम्य किया गया है। जो ब्रह्मज्ञानी लोकव्यवहार एवं सांसारिक भोग से जितना अधिक विरत होगा, वह उतना ही श्रेष्ठ माना जायेगा।

♣

अवतार-तत्त्व

—स्वामी नित्यज्ञानानन्द
बेलुड़ मठ

नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव ईश्वर जब कृपा-वश रक्त-मांस का शरीर धारण कर इस धराधाम पर अवतरित होते हैं तब उन्हें अवतार कहते हैं। शास्त्रों के अनुसार अपनी योगमाया का अवलम्बन करके ईश्वर अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

"प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया"

अर्थात् 'अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से मैं प्रकट होता हूँ।' अवतार मानवेतर शरीर भी धारण करते हैं; पुराण वर्णित दशावतारचरित तो सर्वविदित हैं। फिर भी हमारा विशेष संबंध नरावतार से ही है।

अवतार का स्वरूप

ईश्वर का स्वरूप ही अवतार का स्वरूप है। वेदान्त के प्रायः सभी भक्ति-सम्प्रदायों के अनुसार सगुण निराकार ब्रह्म ही ईश्वर का असली स्वरूप है तथा यही सगुण निराकार ब्रह्म अपनी योगमाया से समावृत होकर अवतार के रूप में प्रकट होते हैं।

लेकिन श्री रामकृष्णदेव के अनुसार ईश्वर का असली स्वरूप निर्गुण निराकार ब्रह्म है तथा निर्गुण निराकार ब्रह्म ही सगुण साकार रूप धारण करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही मत है। निराकार ब्रह्म साकार रूप कैसे धारण करते हैं इसको दृष्टान्त के द्वारा समझाते हुए श्री रामकृष्णदेव कहते हैं—"साकार किस प्रकार का है, जानते हो—जैसे जल और बरफ। जल जमकर ही बरफ बनता है; बरफ के भीतर तथा बाहर जल ही है। जल के अतिरिक्त बरफ और कुछ नहीं है। किन्तु बरफ का आकार है। इसी प्रकार भक्ति की शीतलता से अखण्ड सच्चिदानन्द सागर का जल जमकर बरफ की तरह विभिन्न आकारों में परिणत हो जाता है।" तुलसीदास जी के शब्दों में—

अगुण अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

अवतार के लक्षण

अवतार-पुरुष के निम्नलिखित लक्षणों का निर्देश शास्त्रों में किया गया है—

१. किसी प्रारब्ध-कर्म के कारण ईश्वर मनुष्य-शरीर धारण नहीं करते हैं। दिव्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए वे स्वेच्छा से अवतरित होते

हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं—"निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।"

२. साधारण मानव की तरह अवतार-पुरुष का जन्म माता-पिता के दैहिक सम्बन्ध से नहीं होता। माता के गर्भ में वे सीधे प्रवेश करते हैं।

३. ईश्वर ऐसे माता-पिता के यहाँ अवतरित होते हैं जो सद्गुणों से युक्त तथा असाधारण चरित्र सम्पन्न होते हैं।

४. दिव्य बालक के जन्म-ग्रहण के पहले एवं बाद में माता-पिता को अद्भुत आध्यात्मिक दर्शन एवं अनुभव होते हैं।

५. दिव्य शक्ति एवं दिव्य गुणों से युक्त होकर अवतार-पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं।

६. उनके जीवन में देवभाव एवं मानवभाव का अपूर्व समन्वय होता है।

७. वे निःस्वार्थता की प्रतिमूर्ति होते हैं। उनके सभी कार्य दूसरों के लिए होते हैं।

८. उनके जीवन में साधना एवं कृपा की दो प्रबल धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती दीख पड़ती हैं। बचपन से ही गुरु-शक्ति उनके अन्दर दीख पड़ती है।

९. बालावस्था से ही उन्हें भाव समाधि होने लगती है। साधारण से लेकर अति उच्च आध्यात्मिक अनुभूति की हर अवस्था में वे विचरण कर सकते हैं।

१०. स्पर्श मात्र से अथवा केवल इच्छा मात्र से वे दूसरों में आध्यात्मिकता का संचार कर सकते हैं। उनकी कृपा से नीच एवं पतित व्यक्ति भी क्षणभर में संत बन जाते हैं। इसीलिए उन्हें कपाल-मोचन कहा जाता है।

११. अवतार शास्त्रों की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं, युगधर्म की स्थापना करते हैं तथा आचाण्डाल सबके लिए आध्यात्मिकता का द्वार उन्मुक्त करते हैं।

उपर्युक्त लक्षणों के बावजूद ईश्वर जब मानव-शरीर एवं उसकी अपूर्णताओं को स्वीकार कर नरवत् आचरण करते हैं तब उन्हें पहचानना बहुत ही कठिन हो जाता है। यह कैसे विश्वास हो सकता है कि साढ़े तीन फीट के शरीर के अन्दर अनन्त समाया हुआ है। वे कृपा करके जिसको अपना परिचय देते हैं वह ही उन्हें पहचान पाता है। इसके लिए दिव्य चक्षु की आवश्यकता है।

आविर्भाव काल

अवतार के आविर्भाव काल की चर्चा करते हुए स्वामी सारदानन्दजी लिखते हैं—"अवतार पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभावादि का निर्णय करके ही पुराणकर्ताओं ने अपने वक्तव्य को समाप्त नहीं किया है, किन्तु उनके आविर्भाव काल तक का उन्होंने स्पष्ट रूप से निरूपण किया है। उनका कथन है कि जब सनातनधर्म काल के प्रभाव से ग्लानियुक्त होता है, जब मायाजनित अज्ञान के अनिर्वचनीय प्रभाव से मुग्ध होकर मानव इहलोक एवं पार्थिव भोग-सुख की प्राप्ति को ही सब कुछ मानकर जीवन व्यतीत करता रहता है तथा आत्मा, ईश्वर, मुक्ति आदि इन्द्रियातीत नित्य पदार्थों को किसी भ्रमान्ध युग के स्वप्न राज्य की कविकल्पना मानकर छल, बल तथा चतुराई से सब प्रकार की पार्थिव सम्पत्ति तथा इन्द्रिय सुख को प्राप्त कर भी अपने वास्तविक अभाव को दूर करने में समर्थ न हो अशान्ति के गाढ़ अन्धकारपूर्ण असीम प्रवाह में निपतित होकर यातनाओं से हाहाकार करता रहता है—उस समय श्रीभगवान् अपनी महिमा के द्वारा सनातन धर्म को राहुकवल से मुक्त शशांक

की भाँति उज्ज्वल रूप प्रदान करते हैं तथा दुर्बल मानवों के लिए कृपापूर्वक शरीर धारण कर उनका हाथ पकड़कर उन्हें पुनः धर्ममार्ग में प्रतिष्ठित करते हैं।" भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

आविर्भाव का कारण

अवतार पुरुषों के इस धराधाम पर प्रकट होने की परिस्थिति एवं समय तथा उनके दिव्य कर्मों की विवेचना करने से उनके आविर्भाव का कारण भी स्पष्ट हो जाता है। अपने आविर्भाव का कारण बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

अर्थात् 'साधु-पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की पुनः स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।' लेकिन ईश्वर के अवतारत्व का यही एकमात्र कारण नहीं है। माध्वाचार्यजी के शब्दों में, "यह कोई नियम नहीं है कि जन्म ग्रहण करके ही ईश्वर धर्म एवं साधु-सन्तों की रक्षा तथा अन्य कार्य कर सकते हैं।" वेदान्त देशिक के अनुसार अवतार का मुख्य उद्देश्य अपने आराध्य प को प्रकट करके भक्तों के मन में भक्ति उत्पन्न करना है। श्री अरविन्द के मत में ईश्वर के अवतरण का मुख्य प्रयोजन मानव का ईश्वरत्व के प्रति आरोहण है। अवतार एक ऐसा साँचा तैयार करते हैं जिसके अनुरूप मानव अपने कार्यों को अपनी भावनाओं को ढालकर देवत्व की प्राप्ति करता है। ईश्वर के अवतारत्व के कारणों का निर्देश करते हुए श्री रामकृष्णदेव कहते हैं—"ईश्वर उन पवित्र आत्माओं के लिए मनुष्य-शरीर धारण करते हैं जो ईश्वर से प्रेम करते हैं। निःसन्देह रूप से वे सर्वव्याप्त एवं सर्वभूतों में विराजमान हैं लेकिन ईश्वर को मनुष्य रूप में देखे बिना मानव की व्याकुलता परितृप्त नहीं होती।" "उस आविर्भाव के माध्यम से मनुष्य ईश्वर के साथ संभाषण कर सकता है, उनकी लीलाओं का दर्शन कर सकता है।" "वे (ईश्वर) प्रेमभक्ति सिखाने के लिए मनुष्य के रूप में युग-युग में अवतार होकर आते हैं।" ईश्वर के अवतारत्व का एक और विशेष उद्देश्य है। वे इस धराधाम पर आविर्भूत होकर अपना दिव्य नाम, रूप एवं कर्म मानव जाति के लिए धरोहर के रूप में छोड़ जाते हैं ताकि मानव उनका नाम लेकर, उनके रूप का ध्यान कर तथा उनकी लीलाओं का चिन्तन कर इस भवसागर से पार हो सके। तुलसीदासजी के शब्दों में, "सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।" भगवान् स्वयं अर्जुन से कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

फिर एक बात हमें सदा याद रखनी चाहिए कि ईश्वर के आविर्भाव के कारणों की इति नहीं हो सकती। माँ भवानी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शंकर कहते हैं—

हरि अवतार हेतु जेहि होई।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥

अर्थात् "हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता।"

आविर्भाव का प्रभाव

ईश्वर जब अवतार के रूप में आते हैं तब आध्यात्मिकता की बाढ़ आ जाती है। लोग पुनः

अतीन्द्रिय सत्यों में विश्वास प्राप्त करता है। आत्मा, ईश्वर, मुक्ति आदि केवल कवि की कल्पना एवं पलायनवादी मात्र नहीं रह जाते बल्कि लोग उसे जीवन का अंतिम मानकर इनकी प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हो जाते हैं। इतना ही नहीं, उस अतीन्द्रिय सत्ता की प्राप्ति के लिए वे ईश्वरीय शक्ति भी प्राप्त करते हैं, पूर्णता का मार्ग, मुक्ति का पथ सहज हो जाता है। "जैसे मरुस्थल में गहरे कुएँ से पानी प्राप्त किया जाता है लेकिन वर्षाकाल में जब सर्वत्र जल-प्लावन हो जाता है तब पानी मिलना सहज हो जाता है। उसी प्रकार प्रार्थना, तपस्या आदि के द्वारा बड़ी कठिनाई से ईश्वर प्राप्त होते हैं, परन्तु अवतार के आगमन से, जो पूरे संसार को आध्यात्मिकता से प्लावित कर देते हैं ईश्वर सहज सुलभ हो जाते हैं।" संसार की दुःख चिन्ताओं से त्रस्त असंख्य लोगों को अवतार परम पिता परमेश्वर के चरणों तक ले जाते हैं।

अवतार का आविर्भाव केवल आध्यात्मिक जगत को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि भौतिक जगत में भी उसकी उपस्थिति करता है। कला, संस्कृति, भाषा, साहित्य एवं मानव-जीवन के अन्य पहलुओं में विकास की गति तेज हो जाती है। मानव अपनी चेष्टाओं के हर क्षेत्र में सफल होने के लिए नयी शक्ति तथा नया उत्साह प्राप्त करता है।

अवतार के आगमन से एक नये युग का सूत्रपात होता है। जिस अपरिसीम आध्यात्मिक शक्ति का उत्पादन वे करते हैं वह आनेवाली शताब्दियों तक कार्य करती रहती है। इस शक्ति के द्वारा मानव का भौतिक एवं आध्यात्मिक-दोनों प्रकार का विकास होता है।

अवतार इस संसार में आते हैं, अपना कार्य सम्पादन करते हैं एवं इस संसार से विदा ग्रहण करते हैं। लेकिन हमलोगों के लिए छोड़ जाते हैं अपनी कीर्ति की सदा उद्दीप्यमान शिखा, अपनी मनोहारी छवि तथा प्रेरणादायी वाणी जो युगों तक हमारा मार्ग दर्शन करती है, हमें शाश्वत शान्ति प्रदान करती है।

प्रेम

एक युवती बहुत दिनों बाद आये हुए अपने प्रेमी से मिलने प्रेम में पगली हुई सी चली जा रही थी। रास्ते में बादशाह का पड़ाव था। बादशाह उस समय जाजम बिछाकर नमाज पढ़ रहे थे। प्रेमोन्मत्त उस युवती को रास्ते का कोई भी भान नहीं था, वह जाजम पर पैर रखकर आगे बढ़ गयी। बादशाह को गुस्सा तो आया, पर वे नमाज पढ़ रहे थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। थोड़ी देर में वह अपने प्रियतम से मिलकर उसके साथ लौटी। बादशाह ने उस स्त्री को बुलाकर कहा—'अरी पापिनी। तुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं नमाज पढ़ रहा हूँ और तू जाजम पर पैर रखकर चली गयी। उससे प्रेमहृदया स्त्री ने निर्भयता से कहा—'जहाँपनाह! एक मामूली मनुष्य के प्रेम में पगली होने से मुझ पर आपकी जाजम का पता नहीं लगा, फिर भगवान का ध्यान करते हुए आपने मुझको कैसे देखा। मालूम होता है आप केवल ऊपर से ही नमाज पढ़ रहे थे, आपके मन में भगवान नहीं थे।

उत्तर सुनकर बादशाह ने अपनी भूल समझी और उस युवती को धन्यवाद दिया।

(प्रस्तुति : रमेश गुप्ता, नवभर टाइम्स से साभार)

प्रायः हर व्यक्ति बात करने की कोई न कोई वजह ढूंढ लेता है। बगैर बोले संवाद की कल्पना आमतौर पर नहीं की जाती परन्तु अधिक बोलना भी अक्सर खतरनाक होता है। दरअसल मौन रहकर व्यक्ति अपने हावभाव से अपने आप को अधिक असरदार ढंग से अभिव्यक्त कर सकता है। वैसे भी मजा तो तब है जब—

बात बने बिन बोले

—प्रभात कुमार

कबीर दास का एक पद है—'जनम तेरा बात हि बीत गयो।' बहुत भावपूर्ण पद है। हम प्रायः जीवन भर मौन के महत्त्व को या निरर्थक बातों की अनुपयोगिता को नहीं समझ पाते। बातों से अलग हटकर मौन रहने के महत्त्व को समझने या मौन की श्रेष्ठता की ओर हमारा कभी ध्यान ही नहीं जाता।

कोई भी व्यक्ति यदि अपनी बातों की ओर ध्यान दे, सही ढंग से उनका विश्लेषण करे, तो उसे ज्ञात होगा कि वह अधिकांश बातें ऐसी करता है, जिनकी कोई सार्थकता नहीं। कहावत है—'पहले तोलो, फिर बोलो।' लेकिन इस सूक्ति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। प्रायः लोग बोलने के लिए इतने अधीर होते हैं कि वे कम बोलने या मौन रहने की बात सोच भी नहीं सकते। हमारे बोलने की कोई सार्थकता हो या न हो, लेकिन हम बोलते रहते हैं। कम बोलने से या सोच-समझकर बात करने से हमारी ऊर्जा भी बचती है और हमारी विवेकपूर्ण बुद्धि का विकास भी होता है। कम बोलने या मौन रहने का प्रारंभ में अभ्यास करना पड़ता है, लेकिन आदत बन जाने पर व्यक्ति को इसके लाभ स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगते हैं।

प्रायः हर व्यक्ति कोई न कोई वजह ढूंढ़ लेता है, बात करने की। हमें कोई भी मिलता है, हम तुरन्त उससे मौसम की, या ऐसी ही कोई बात शुरू कर देते हैं, जिसकी कोई सार्थकता नहीं, कोई अर्थवत्ता नहीं। असल में चुप रहना हम इतना कठिन मान लेते हैं कि किसी भी बहाने से हम बोलना शुरू कर देते हैं। दो परिचित व्यक्ति एक साथ कहीं जा रहे हों या एक साथ बैठे हों और बोल न रहे हों, तो देखने वालों को ही अजीब सा लगता है। असल में दो आदमी साथ-साथ रहकर चुप रहने की कला ही भूल गये हैं। फ्रायड का कहना है कि—'पहले तो मैं सोचता था कि हम बात करते हैं कुछ कहने के लिए। लेकिन अब मेरा अनुभव है, हम बात करते हैं कुछ छिपाने के लिए।' फ्रायड का यह कथन सच प्रतीत होता है।

बोल-बोल कर प्रायः हर व्यक्ति ने अपने चारों ओर ऐसा जाल फैला लिया है कि अब उसके लिए उस जाल से निकल पाना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। यदि किसी व्यक्ति को थोड़ी देर चुप बैठने के लिए कह दिया जाए, तो वह बेचैनी अनुभव करने लगेगा। ऐसी स्थिति में व्यक्ति बेचैनी या तनाव पर अपने मित्रों और संबंधियों

के बारे में जो राय बनाता है, वह उन लोगों की बातों के आधार पर ही न कि उनके उठने-बैठने, चलने-फिरने आदि के आधार पर। बातों के अलावा हम किसी भी व्यक्ति की अन्य विशेषताओं की ओर ध्यान ही नहीं देते। ऐसा क्यों? कम बोलने वाले, शान्त रहने वाले या मौन धारण किये हुए किसी व्यक्ति के साथ, लम्बे समय तक रह पाना कठिन कार्य है। कठिन इसलिए, क्योंकि हमें मौन और शान्त रहकर काम करने की आदत ही नहीं रही। मनुष्य इतना अशान्त है कि वह दूसरों से बातें करने में व्यस्त होने पर भी स्वयं से अपने भीतर भी बातें करता रहता है। अधिकांश व्यक्ति तो अपने जीवन का बहुमूल्य समय और शक्ति व्यर्थ की बातों में ही नष्ट कर देते हैं। यदि व्यक्ति निश्छल मन से शान्त होता है, विचार करता है, मौन साधता है, तो उसके भीतर शब्दहीन अनुभूति की संभावना की बात जन्म लेती है और वह उस मौन अनुभूति का रसास्वादन करता है। पर ऐसे लोग विरले ही देखने को मिलते हैं।

व्यक्ति यदि विचार करे तो उसे यह बात आसानी से समझ में आ जाएगी कि उसने बोल कर जितने शत्रु बनाये हैं, उतने मौन रहकर नहीं। बोलने पर उसे जितनी बार अपमानित या दण्डित होना पड़ता है, उतना मौन रहने पर नहीं। कहावत है—एक चुप, सौ को हरावे'—यह सच है। अकबर ने एक बार बीरबल से पूछा—'बीरबल, यदि किसी मूर्ख से पाला पड़ जाए, तो क्या करना चाहिए? बीरबल ने कहा—'जहांपनाह, मौन हो जाना चाहिए'।' मौन रहना सबसे अच्छा समाधान है। भगवान महावीर ने भी कहा है—'यदि कोई ऐसा पंडित मिल जाए, जो केवल तर्क के बल पर विवाद बढ़ाना चाहता है, शास्त्रार्थ करना चाहता है, ऐसी स्थिति में मौन हो जाना ही श्रेष्ठ है।' मौन रहकर व्यक्ति सहज रूप से अपना भला कर सकता है। मौन रहकर आँखों के संकेत से, चेहरे के हाव-भाव से, हाथों के स्पर्श से हम जितना अधिक असर पैदा कर सकते हैं, उतना शब्दों द्वारा नहीं। बच्चों की निश्छल मुस्कान, फूलों की खुशबू, चन्द्रमा की शीतलता, आसमान में चमकते सितारे मौन रहकर किसको प्रभावित नहीं करते?

बोलना तो सिर्फ प्रलोभन है, चंचलता है। अनेक लोग ऐसे हैं, जो थोड़ी देर भी न बोलें, तो वे उद्विग्न हो उठते हैं। बोलने से पहले, बोलते समय और बोलने के बाद भी व्यक्ति का चंचलता-पूर्ण व्यवहार व्यक्ति के अन्तर्ज्ञान में बाधा डालता है। अन्तर्ज्ञान की साधना करने वाले मौन की साधना करते हैं।

व्यक्ति के हृदय में जब शून्यता घनी होती है, तो मौन का जन्म होता है और फिर तो आनन्द की लहरें उठती ही चली जाती हैं। आनन्द अन्य भौतिक वस्तुओं की तरह सीमित नहीं है। आनंद अनंत है, वैसे ही जैसे परमात्मा अनंत है। सीमातीत आनन्द को व्यक्ति अपने भीतर के मौन द्वारा ही पा सकता है। व्यक्ति जब शांत होकर अपने ही भीतर बैठ जाता है, तब मन भी शांत होता है और वह कोई उलझन या अशांति भी खड़ी नहीं करता। ऐसी स्थिति आने पर व्यक्ति मौन की श्रेष्ठता को समझ सकता है।

जैसे ही व्यक्ति शान्त होकर बैठता है, वैसे ही वह पाता है कि उसकी रीढ़ से कोई ऊर्जा ऊपर की ओर उठनी शुरू हो गयी है। व्यक्ति उसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाता, अनुभव करता है। जैसे-जैसे ऊर्जा तरंगित होती है, वैसे-वैसे व्यक्ति आनन्दित होता है। उसका दुःख, उदासी, तनाव

कम होता जाता है और आनन्द का भाव बढ़ने लगता है।

जो व्यक्ति जीवन में मौन रहने की कला सीख लेता है, उसे उसका ही शरीर हजारों-हजार अनुभव दे जाता है। वह अपने शरीर से सारे योग-शास्त्रों को जान जाता है। अगर व्यक्ति मौन हो जाए, मौन होने की कला को अपने जीवन में उतार ले, तो उसे सोचना नहीं पड़ेगा कि सत्य क्या है, सत्य उसे दिखायी पड़ेगा। मौन होते ही व्यक्ति को अपने भीतर के तीर्थ दिखायी देने लगते हैं। संतोष उपलब्ध हो जाता है। गुरु नानक का कहना है—'भिखारी बादशाह हो जाता है, जैसे ही मौन होता है। अथाह को थाह मिल जाती है।'

प्रेम की भाषा मौन है। बिना कहे, मौन रहकर यदि हम किसी को यह महसूस करा सकें कि हम उसे प्रेम करते हैं, तो उसका महत्त्व कुछ और ही होगा। माँ की ममता का पता बेटे को उसके मौन से, उसके व्यवहार से चलता है, बोलने से नहीं। कबीर का अजपा जाप ही ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है, केवल राम-राम रटने से बात नहीं बनती। ब्रह्म अनिर्वचनीय है। उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। उसका आस्वाद तो गूंगे के गुड़ की तरह है। जैसे गूंगा व्यक्ति गुड़ के स्वाद का आनन्द तो ले सकता है, उस आनन्द की अभिव्यक्ति बोलकर नहीं कर सकता। उसी प्रकार मौन में गहरे उतर कर हम ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं, पर बोल कर उसकी अनन्तता का बखान नहीं कर सकते। मौन रहकर ही व्यक्ति जब प्रेम, घृणा, करुणा, क्रोध और ऐसे न जाने कितने ही मनोविकारों को सहजता अभिव्यक्ति दे सकता है—फिर निरर्थक बोलने की क्या जरूरत ?

मौन व्यक्ति को निर्विचार होने की कला सिखाता है। जब तक व्यक्ति विचार के साथ चलता है, असंतुष्ट रहता है। विचार नयी-नयी वासना को जन्म देता है। वह शराब की तरह है, उसकी मान कर चले कि भटके। विचार एक नशा है, उसके पास कोई जवाब नहीं है, समाधान नहीं है। विचार के पास उत्तर है, निर्विचार में और निर्विचार वही व्यक्ति है जो मौन की कला में पारंगत है।

मौन रहने वाला व्यक्ति निरहंकारी हो जाता है। बोल-बोलकर अनेक प्रकार के प्रपंचों और विवादों द्वारा या अपनी विद्वत्ता और पांडित्य द्वारा अहंकार का जो महल खड़ा कर लेता है, वह मौन होते ही ढह जाता है। मौन में साधक के अहं का विसर्जन वैसे ही हो जाता है जैसे पानी में पानी के बुलबुले का।

मौन एक कला है, साधना है। मौन व्यक्ति के जीवन की परम उपलब्धि है। मौन सत्य है, संतोष है, ईश्वर है। मौन ही व्यक्ति के जीवन के परम सुखों का अमूल्य भंडार है। व्यक्ति को चाहिए कि वह मौन के महत्व को समझे और उसे अपने जीवन में उतारने के लिए प्रयासरत रहे।

(राष्ट्रीय सहारा २० मई, १९९३ से साभार)।

♣

संसार को यदि किसी एक धर्म की शिक्षा देनी हो, तो वह है 'निर्भीकता'।
वीर बनो, सर्वदा कहो, 'अभीः अभीः'– 'मैं भय शून्य हूँ, मैं भयशून्य हूँ।

—स्वामी विवेकानन्द

मनुष्यता

पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम को माताजी के पास एक फ्रांसिसी युवक पहुँचा। वह युवक बहुत ही जोशीला था और लड़ने-मरने के लिए सदा ही तैयार रहता था। यों देखने में वह था भी बड़ा तगड़ा। माताजी, जो कि उसके स्वभाव से परिचित थीं, बोलीं—यह बताओ कि मुक्के के बदले मुक्का मारना कठिन काम है या मुक्के के बदले अपना हाथ अपनी जेब में डाल लेना कठिन काम है?

उस युवक ने कुछ सोचा फिर बोला—मुक्के के बदले मुक्का तो तुरन्त मारा जा सकता है, यह तो आसान काम हुआ। मुक्के के बदले हाथ जेब में डाल लेना, निश्चय ही कठिन काम है।

—शाबास, अच्छा अब यह बताओ कि तुम जैसे नौजवान और तगड़े युवक को आसान काम करने चाहिए या कठिन काम?

युवक फिर सोचने लगा और बोला—अवश्य ही कठिन काम करने चाहिए।

—यह भी ठीक है, अब यह बताओ कि आज के बाद तुम कौन-सा काम करना पसन्द करोगे? मुक्के का जवाब मुक्के से दोगे या बदले में हाथ जेब में डाल लोगे?—मुस्करा कर माताजी ने पूछा।

युवक माताजी के तर्क-जाल में आ चुका था, लेकिन वहाँ उसे सत्य के प्रकाश का दर्शन हुआ। वह बोला—अब हाथ मेरी जेब में रहेंगे। मैं नौजवान हूँ और कठिन काम ही करूँगा। यह कहकर तथा माताजी को प्रणाम करके वह नौजवान वहाँ से चला गया।

अगले दिन वह खुशी से नाचता हुआ माताजी के पास आया और बोला—आज एक व्यक्ति क्रोध में आकर गाली दे बैठा। पर मेरा डीलडौल देखकर घबराकर आत्मरक्षा के लिए लड़ने को तैयार हो गया, लेकिन मैंने अपने हाथ जेब में डाल लिए, फिर वह मेरे पास आया और मैंने हाथ निकाल लिए।

—फिर क्या किया तुमने?—चौंक कर मातजी ने पूछा।

—फिर मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लिया और हाथ मिला लिया।

नौजवान का उत्तर सुनकर माताजी प्रसन्न हुईं। उन्होंने उसकी कमर थपथपाते हुए कहा—तुम सच्चे नौजवान हो। क्रोध को पी लेना ही मनुष्यता है।

एक अपील

रामकृष्ण मठ
पो०-बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा
(प० बंगाल) ७११ २०२

जैसा कि आप में से अधिकांश लोग जानते हैं कि विश्वव्यापी रामकृष्ण भावधारा के संस्थापकों की पवित्र स्मृतियों के संरक्षणार्थ बेलुड़ मठ में एक संग्रहालय की स्थापना की गयी है, जिसका उद्घाटन १३ मई, १९९४ ई० को संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी के हाथों सम्पन्न हुआ था।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों द्वारा उपयोग में लाये गये वस्त्र, पादुकाएँ तथा अन्य वस्तुएँ, उनके द्वारा लिखित पत्र और उनके द्वारा पढ़ी गयी पुस्तकों आदि को संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। संग्रहालय में संलग्न अत्याधुनिक पुराभिलेखागार में उपर्युक्त वस्तुओं को आधुनिकतम तकनीक की सहायता से संरक्षित किया जाता है। हमें आपको यह भी सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि विगत ४ फरवरी, १९९६ को पूज्य संघाध्यक्ष महाराज ने एक नयी तकनीकी दृष्टि से नियोजित, विशाल संग्रहालय तथा पुराभिलेखागार भवन की आधारशिला रखी।

वैसे अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएँ अपने पास पड़ी ऐसी वस्तुएँ हमें दे रहे हैं, तथापि हम एक बार पुनः अपने भक्तों, संस्थाओं तथा जनसाधारण से यह अपील करते हैं कि वे अपने पास पड़ी इस तरह की किसी भी स्मरणीय वस्तु को बेलुड़ मठ के ट्रस्टियों अथवा अपने निकट स्थित हमारे किसी भी शाखाकेन्द्र को सौंप दें। हम एक बार पुनः दुहराते हैं कि यदि ये वस्तुएँ वैज्ञानिक पद्धति से संरक्षित नहीं की गयीं, तो वे समय के आघात को नहीं झेल सकेंगी और सदा के लिए दुनिया से विलुप्त हो जायेंगी। हम आपके हार्दिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं और हम इसके लिए आपका चिर आभारी रहेंगे।

पुराभिलेखागार के कार्य, प्रस्तावित भवन का मॉडल तथा प्रदर्शित वस्तुओं के नमूनों के आधार पर बनायी गयी १५ मिनट का एक वीडियो कैसेट विक्रय के लिए उपलब्ध है जिसे रामकृष्ण संग्रहालय, बेलुड़ मठ और हमारे कुछ भारतीय तथा विदेश में स्थित केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकता है।

१७-६-१९९६

स्वामी आत्मास्थानन्द
महासचिव

पटना में श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज

पटना, २७ अक्टूबर। श्रीमत् स्वामी रंगानाथानन्दजी महाराज, परम उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन का रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में २१ अक्टूबर की संध्या में शुभागमन हुआ। उनके पदार्पण से पूरे आश्रम परिसर का वातावरण आध्यात्मिक ऊर्जा से स्पन्दित हो उठा। २३, २४ और २५ अक्टूबर को पूज्य महाराज ने क्रमशः १०२, ८९ और ३८ अर्थात् कुल २२९ दीक्षार्थी नर-नारियों को कृपा-पूर्वक दीक्षा प्रदान की।

२४ अक्टूबर की संध्या को श्रीरामकृष्ण मंदिर के प्रार्थना भवन में स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने 'उपनिषदों का सन्देश' विषय पर एक सारगर्भ एवं उद्बोधक प्रवचन दिया। उन्होंने अपने प्रवचन के क्रम में कहा कि आधुनिक विज्ञान मात्र विगत ४०० वर्षों से सत्य की खोज में लगा है। उसकी खोज के विषय बाह्य जगत के पदार्थ हैं। किन्तु भारत ने विगत चार वर्षों से सत्य के सन्धान में अपनी मेधा अर्पित की है। मुण्डक उपनिषद् में हम पाते हैं कि शौनक नामक प्रसिद्ध महर्षि ने ब्रह्म विद्या जानने के लिए महर्षि अंगिरस से बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा—'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।' अर्थात् 'भगवन्! जिसको भली-भांति जान लेने पर यह जो कुछ देखने, सुनने और अनुमान करने में आता है, वह सब का सब जान लिया जाता है, वह परम तत्व क्या है? उसे कैसे जाना जाय?' अंगिरस ऋषि ने कहा—'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।' अर्थात् विज्ञान दो हैं, एक नहीं। मनुष्य के लिए जानने योग्य दो विद्याएं हैं—एक तो परा और दूसरी अपरा। शिक्षा व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, गणित आदि अपरा विद्या हैं। और जिसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा का तत्व ज्ञान होता है, वह परा विद्या है। परा विद्या अक्षर है, अविनश्वर है। अपरा क्षर हैं, नाशवान है। भारत ने पहले अपरा विद्या को विकसित किया। फिर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में व्याप्त परम सत्य—परा विद्या का अन्वेषण किया। चार हजार वर्ष पूर्व ही अक्षर विद्या का संधान किया। वही सत्य उपनिषदों में निहित है। उपनिषद सत्य—केवल सत्य चाहती है।

बीसवीं सदी में आधुनिक विज्ञान गहराई में जाता है और सत्य की तलाश करता है। एक है विषय और दूसरा विषयी— विषयी अर्थात् ज्ञाता और विषय अर्थात् ज्ञान। हमारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ बाहर की ओर जाती हैं। परन्तु मनस, बुद्धि भीतर की ओर जाती है। मनुष्य बाहर से देखने पर साधारण आदमी दिखाई पड़ता है किन्तु आन्तरिक रूप से वह ब्रह्म है।

स्वामी रंगनाथानन्दजी ने आगे कहा कि ब्रह्म ने ही अपने को इस जगत् और जीव के रूप में व्यक्त किया है। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति।' यानी जिससे सभी जीवों का जन्म होता है, जिससे जीव जीवित रहते हैं, जिसमें जीव का लय होता है और जिससे मोक्ष मिलता है, वही जानने योग्य है, वही ब्रह्म है। (तैत्तिरीयोपनिषद् ३-१-१) उस ब्रह्म का स्वरूप लक्षण बताते हुए तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' अर्थात् ब्रह्म सत्य है। वह चित् स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप और अनन्त है। ब्रह्म ने जगत की सृष्टि की अथवा जगत् के रूप में स्वयं को प्रक्षिप्त किया और समस्त जीवों में वह प्रविष्ट हो गया। ब्रह्म

स्वभावतः आत्मस्वरूप है। आत्मा ही ब्रह्म है। इसलिए हम सभी मूलतः एक हैं। बाहर से अनेक हैं, भीतर से एक हैं। इसी को श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे—'एखाने एखाने ज्ञान, सेखाने सेखाने अज्ञान।' अर्थात् यहाँ यहाँ (यानी हृदय के भीतर ब्रह्म है) यही ज्ञान है, वहाँ वहाँ यह अज्ञान है। ब्रह्म अन्यत्र नहीं है, सर्वत्र है। मुण्डक उपनिषद् में इसे रूपकों में बड़े अच्छे ढंग से समझाया गया है।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि,
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥
(मुण्डकः १-१-७)

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, और जिस प्रकार जीवित मनुष्य से केश और रोएँ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अविनाशी परब्रह्म से इस संसार में सब कुछ उत्पन्न होता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि ब्रह्म अपने ही हृदय में है तो फिर उसे सभी देख क्यों नहीं पाते हैं? इसके उत्तर में कठोपनिषद् में कहा गया है कि इन्द्रियाँ बाहर की ओर जाने वाली हैं। पराङ्—बाहर की वस्तुओं को ही देखती हैं। कोई-कोई बुद्धिमान ही प्रत्येक आत्मा-अन्तरात्मा को, अपनी इन्द्रियों को बाह्यवस्तु से हटाकर, भीतर की ओर मोड़कर, देख पाता है। यमराज ने नचिकेता से कहा—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु
प्रसादान्महिमानमात्मनः॥
(३-२०)

अर्थात् जीवात्मा की हृदय रूपी गुफा में रहनेवाला परमात्मा सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म और महान् से भी महान् है। परमात्मा की उस महिमा को अक्रतुः यानी कामना रहित और वीतशोकः—चिन्तारहित कोई कोई व्यक्ति देख पाता है।

कठोपनिषद् काव्यात्मक उपनिषद् है। स्वामी विवेकानन्द इसे बहुत पसन्द करते थे। आत्मा की सूक्ष्मता का बहुत सुन्दर वर्णन करते हुए यमराज नचिकेता से कहते हैं—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ो आत्मा न प्रकाशते,
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥
(३-१८)

यानी यह आत्मा समस्त प्राणियों में गूढ़ रूप से निहित है किन्तु माया के परदे में छिपा रहने के कारण सबको प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल 'सूक्ष्मया अग्रया बुद्ध्या'—अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जाता है। अतः परमात्मा सबमें है। इसे तीक्ष्ण और एकाग्र बुद्धि से देखा जा सकता है। विज्ञान इतनी गहराई में नहीं जाता। जर्मन वैज्ञानिक आइंसेनबर्ग ने कहा अनिश्चित है। किन्तु यदि हम एक को जानते हैं तो सब को जानते हैं।

उपनिषद् का यही सन्देश है कि तुम मुक्त हो सकते हो। सभी जीव मुक्त हो सकते हैं। जो मुक्त हैं वे अविनाशी नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त हैं। ब्रह्मसूत्र की यही आत्मैक्य विद्या है। चेतना एक वचन है। यह कभी भी बहुवचन नहीं हो सकती। गीता कहती है—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
(१३-१६)

यानी वह परमात्मा विभागरहित एकरूप आकाश के समान परिपूर्ण होने पर भी चराचर सम्पूर्ण जीवों में विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है। अर्थात् सारा विश्व आध्यात्मिक दृष्टि से एक

है। यही उपनिषद् का सन्देश है, आधुनिक विज्ञान भौतिक विज्ञान है। तुम प्रकृति के हाथों का खिलौना हो गये हो। वह जैसा चाहती है तुम से करवाती है। किन्तु तुम्हें प्रकृति को जीत कर विश्व में व्याप्त एकात्मता का बोध करना है। श्रीरामकृष्ण ने इसी विश्व एकात्मता का सन्देश दिया था जिसे स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका जाकर समस्त पश्चिमी जगत में प्रचारित किया।

पटना रामकृष्ण मिशन आश्रम के सचिव श्रीमत् स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज ने अन्त में धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पूज्य महाराज के द्वारा अपनी आध्यात्मिक उपस्थिति एवं भावपूर्ण व्याख्यान के द्वारा पटनावासियों को आनन्द प्रदान करने हेतु अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट की।

क्षेत्रीय सभा

पटना २४ अक्टूबर। रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ प्राक्तनी (रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के पूर्व छात्रों का संगठन) की प्रथम क्षेत्रीय सभा स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम के सभागार में गत बुधवार को सोल्लास सम्पन्न हुई। रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के सचिव स्वामी सुहितानन्दजी महाराज ने सभा की अध्यक्षता की। रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के सचिव एवं इस सभा के मुख्य अतिथि स्वामी चन्द्रानन्द जी महाराज ने इस अवसर पर प्रकाशित एक स्मारिका का लोकार्पण किया।

क्रिसमस दिवस : ४ दिसम्बर

वचनामृत में श्रीरामकृष्ण-ईशू-प्रसंग

मणि श्रीरामकृष्ण के पैरों पर हाथ फेर रहे हैं, श्रीरामकृष्ण उनसे बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—अहा, इन्हें (ब्राह्मणी आदि को) कितना आनन्द हुआ है!

मणि—कैसे आश्चर्य की बात है, ईसा मसीह के समय भी ऐसा ही हुआ था। वे भी दो बहनें थीं—परम भक्त मारथा (Martha) और मेरी (Mary)

श्रीरामकृष्ण—(आग्रह से)—उनकी कहानी क्या है, जरा कहो तो।

मणि—ईशू उनके यहाँ भक्तों के साथ बिल्कुल इसी तरह गये थे। एक बहन उन्हें देखकर भाव और आनन्द के पारावार में मग्न हो गयी थी।.....दूसरी बहन अकेली जलपान का प्रबन्ध कर रही थी। उसने अपनी बहन से कोई मदद न पा ईशू के पास शिकायत की, कहा, 'प्रभु, देखिए तो, दीदी का यह कितना बड़ा अन्याय है! आप यहाँ अकेली चुपचाप बैठी हुई हैं, और मैं अकेली यह सब काम कर रही हूँ।'

तब ईशू ने कहा, तुम्हारी दीदी धन्य हैं, क्योंकि मनुष्य जीवन में जो कुछ चाहिए (ईश्वर-प्रेम) वह उन्हें हो गया है।'

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, यह सब देखकर तुम्हें क्या जान पड़ता है?

मणि—मुझे जान पड़ता है, ईशू, चैतन्य और आप एक ही हैं।

श्रीरामकृष्ण—एक! एक! एक ही तो! वे (ईश्वर)—देखते नहीं हो—इसमें किस तरह से हैं।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने अपने शरीर की ओर उँगली से इशारा किया।

× × ×

मणि—यदु मल्लिक के बगीचे में ईशू की तस्वीर देखकर भाव समाधि हुई थी, आपने देखा था—ईशू की मूर्ति तस्वीर से निकलकर आपमें आकर लीन हो गयी।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप हैं। फिर मणि से कह रहे हैं—'गले में यह जो हुआ है, सम्भव है इसका कोई अर्थ हो।'

—(वचनामृत : तृतीय भाग : पृ० २६०-६१)

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनेन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक
विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह बृहत् जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी की बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड लगभग ढाई ४०० पृष्ठों का है
हर खण्ड का मूल्य रु० ५०/- तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु० १२०/-

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।